Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गीतामृत

द्वितीय भाग

(अध्याय 7 से 12)

श्रीमद् भगवद् गीता का व्यवहारिक विवेचन

जीवन यापन की कला

Art Of Living

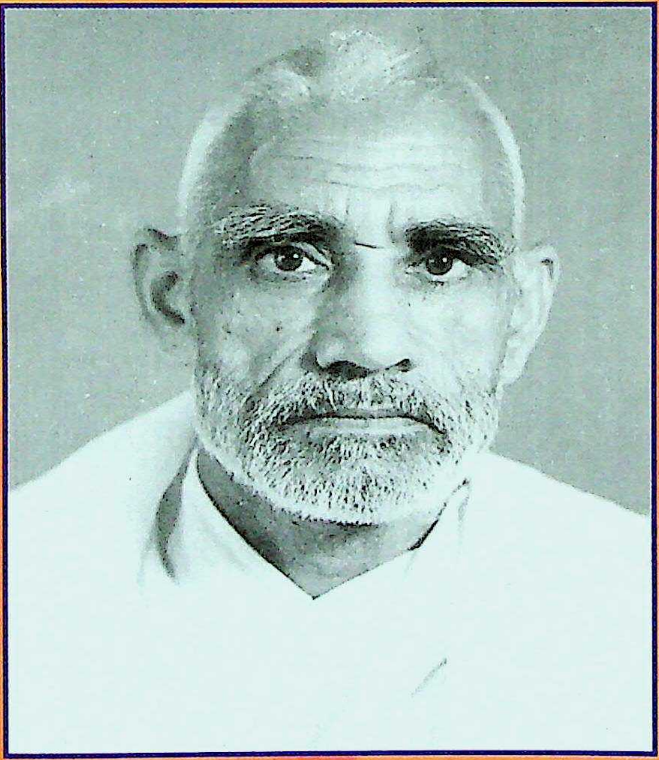

महात्मा श्री नारायणदास जी

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पूज्य महात्मा श्री नारायणदास जी प्रणीत

गीतामृत

★

श्रीमद्भगवद्गीता का व्यावहारिक विवेचन

★

जीवन यापन की कला
(Art of Living)

★

द्वितीय भाग

(अध्याय ७ से १२ तक)

★

सम्पादक-

धर्मवीर एम.ए.

★

प्रथम संस्करण

१९६८

★

द्वितीय मुद्रण

१९७६

★

तृतीय मुद्रण

२००१

★

मूल्य पैंतीस रूपये

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गीतामृत

(Art of Living)

श्रीमद्भगवद्गीता का व्यावहारिक विवेचन

द्वितीय भाग

अनुक्रमणिका

(विषय निर्देश के साथ कोष्ठक में पृष्ठ संख्या दी गई है)

१. सातवाँ अध्याय (२७३-२६४)

ज्ञान विज्ञान योग (२७५) आत्म-तत्व का साङ्गोपाङ्ग वर्णन (२७६) अपरा प्रकृति (२७६) परा प्रकृति (२७६) जगत का मूल आधार परमात्मा (२८०) सम्पूर्ण पदार्थों में परमात्मा की व्यापकता (२८१) दैवी माया तथा उससे मुक्त होने का उपाय (२८३) भगवद्-भक्ति से विमुख व्यक्ति (२८४) भगवद्-भक्ति के आतुर व्यक्ति (२८४) भक्तों में ज्ञानी की श्रेष्ठता (२८६) देवताओं के उपासकों की गति (२८८) जन साधारण का परमात्म-तत्व (परमेश्वर) की शरण में न जाने का कारण (२६०) मोह से आक्रान्त जीवों की परमात्म-तत्व प्राप्त करने की उत्सुकता (२६२)

२. आठवाँ अध्याय (२६५-३१६)

अक्षर ब्रह्मयोग (२६७) ब्रह्म (३००) अध्यात्म (३००) कर्म (३०१) अधिभूत (३०२) अधिदैव (३०३) अधियज्ञ (३०३) विष्णु-पद प्राप्ति की युक्ति (३०४) दिव्य परमपुरुष के भाव को प्राप्त करने की विधि (३०७) दिव्य परमपुरुष के गुणों के चिन्तन की विधि (३०८) योगी की परम गति प्राप्त करने की विधि (३०६) ज्ञानी द्वारा परमात्म-तत्व की प्राप्ति (३१०) दिव्य जीवन को प्राप्त हुए साधक के पुनर्जन्म की अनिवार्यता तथा परमपद को प्राप्त साधक की पुनर्जन्म से मुक्ति (३११) ब्रह्मा के जीवन की अनित्यता (३१२) परमात्मपद की नित्यता (३१४) योगी के देह त्यागने पर उसका पुनर्जन्म होगा या नहीं जानने की प्राचीन प्रचलित कसौटी (३१६)

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

३. नवाँ अध्याय (३२०-३४८)

राजविद्याराजगुह्ययोग (३२३) परम गोपनीय ज्ञान का रहस्यमय विवरण (३२६) प्राणियों का परमात्मा में स्थित होने का रहस्य (३२८) आत्म-स्वरूप में स्थित श्रीकृष्ण सदृश अवतारी महापुरुष में परमात्म-भाव की अवहेलना का कारण (३३१) दैवी प्रकृति के आश्रित भक्तजन की कार्य प्रणाली (३३३) मेरे, यानी भगवान् के विविध रूप (३३४) यज्ञ द्वारा भगवान की पूजा करने वाले सकामी पुरुषों की गति (३३६) भगवद्भक्त की सुरक्षित साधना एवं भगवद्प्राप्ति (३३८) वैष्णवी शक्ति के भाव को प्राप्त होकर परमात्म-तत्व के भाव को प्राप्त होने की अत्यन्त सुगम विधि (३४१) वैष्णवी शक्ति की उपासना के अधिकारी व्यक्ति (३४३) वैष्णवी शक्ति के निमित्त शरीर के सदुपयोग की रीति (३४६)

४. दसवाँ अध्याय (३४६-३७०)

विभूति योग (३५१) त्रिगुणात्मक शक्ति का आदिकारण परमात्म-तत्व (३५३) तत्वदर्शी ज्ञानवान् व्यक्ति की पापों से मुक्ति (३५४) नाना प्रकार के भावों में चित्त के चलायमान न होने की विधि (३५५) परमात्म-तत्व में लीन तत्व-ज्ञानी योगी के आचरण का परिणाम (३५८) भगवान् की विभूति और योग का विस्तृत वर्णन पुनः श्रवण करने के लिये अर्जुन की प्रार्थना (३६०) भगवान् की प्रधान-प्रधान दिव्य विभूतियों का विस्तृत विवरण (३६२) भगवान् के भाव को स्पष्ट अनुभव करने की कसौटी (३६६)

५. ग्यारहवाँ अध्याय (३७१-४०४)

विश्वरूप दर्शन योग (३७३) पूर्व अर्जित संस्कारों के आधार पर विभूतियों में भगवान् के चिन्तन की बताई गई विधि के संस्मरण (३७७) समस्त विभूतियों से युक्त भगवान् के पूर्ण स्वरूप का दर्शन (३७८) अर्जुन के मानसिक भावों की भगवान् के बृहत् रूप द्वारा पुष्टि (३७६) मन ही मन के वार्तालाप को प्रत्यक्ष रूप से व्यक्त कराने की दृष्टि से "दिव्य चक्षु" का महत्व (३८०) अर्जुन द्वारा देखे गये बृहत् आकार के रूप को दिखाने के लिये संजय की आवश्यकता (३८१) विश्वरूप दर्शन के हेतु

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अर्जुन का नम्र निवेदन (३८४) विश्वरूप दर्शन देने की भगवान् की स्वीकृति एवं उसे देखने की विवेक बुद्धि की जागृति (३८५) विश्वरूप का दर्शन (३८६) अर्जुन ने जैसे विश्वरूप का दर्शन किया उसका अर्जुन के द्वारा ही वर्णन (३८८) विराट्रूप की भयं-करता से भयभीत अर्जुन के द्वारा उनका परिचय प्राप्त करना (३९३) विराट् रूप भगवान् का अपना परिचय देते हुए अर्जुन को युद्ध जीतने का आश्वासन देना (३९३) अर्जुन के द्वारा विराट् रूप में भगवान् की अद्भुत महिमा का वर्णन एवं उनकी महिमा का पूर्व परिचय न होने के कारण अपने द्वारा किये गये अशिष्ट व्यवहार की क्षमा याचना (३९५)

६. बारहवाँ अध्याय (४०५-४३२)

भक्तियोग (४०७) भगवान् के मत से सगुण भक्त की श्रेष्ठता (४१०) सगुण ब्रह्म के उपासक की शैली (४११) निराकार अव्यक्त ब्रह्म के उपासक की शैली (४१३) निराकार अव्यक्त ब्रह्म और सगुण ब्रह्म के उपासकों के लक्ष्य में समानता (४१४) ईश्वरार्पण बुद्धि से कर्म करने वाले भक्त की जन्म-मरण से मुक्ति (४१६) सगुण उपासक अनन्य भक्त बनाने की विधि (४१७) भगवान् का अपने को अविभाजित अंश मानने वाला भक्त (४१८) अपने को भगवान् का अविभाजित अंश मानने का अभ्यास करने वाला भक्त (४२१) भगवान् के निमित्त कर्म करने वाला भक्त (४२२) कर्म के परिणाम को भगवान् पर ही छोड़ देने वाला भक्त (४२४) कर्मफल-त्याग की श्रेष्ठता (४२५) अनन्य भक्त के लक्षण (४२७)

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ॐ

सातवाँ अध्याय

ज्ञान–विज्ञान योग

अर्थात्

आत्म–साक्षात्कार–सिद्धान्त
के व्यावहारिक
ज्ञान का प्रकरण।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ज्ञान विज्ञान योग

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते।।२।।

मैं तुझको यह ज्ञान, विज्ञान सहित अर्थात् व्यावहारिक रूप सहित सम्पूर्ण कहूँगा जिसको जानने के उपरान्त इस लोक में पुनः आत्म-ज्ञान सम्बन्धी अन्य जानकारी की कोई आवश्यकता ही नहीं रहती।।२।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

शुद्ध अंतःकरण से युक्त एवं समत्व बुद्धि रखने वाला साधक मन की एकाग्रता से किस प्रकार आत्म-साक्षात्कार करके भगवान् का भक्त अर्थात् अतिशय श्रेष्ठ योगी बन सकता है, इसका पूर्ण विवरण पाठक छठे अध्याय में पढ़ ही चुके हैं। अब भगवान् द्वारा व्यक्त किया गया आत्म-स्वरूप का साङ्गोपाङ्ग वर्णन पाठक इस सातवे अध्याय में पढ़ेंगे । साथ ही वे इस अध्याय में उस व्यावहारिक ज्ञान का भी परिचय प्राप्त करेंगे जिससे अतिशय श्रेष्ठ योगी (भक्त) अन्तकाल में भी आत्म-स्वरूप में किस प्रकार स्थित रह सकता है।

भगवान् कहते हैं कि देखो अर्जुन, मैं तुझे यह स्पष्ट कर चुका हूँ कि अतिशय श्रेष्ठ योगी ही मेरा भक्त होता है, क्योंकि वह मेरे जैसा ही आचरण करता है। हाँ, उसका कर्म-क्षेत्र मेरे कर्म-क्षेत्र की अपेक्षा अत्यंत संकीर्ण होता है। ज्यों-ज्यों ही भक्त की कर्म करने की क्षमता बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों ही उसका कर्म-क्षेत्र भी बढ़ता जाता है। इस प्रकार उसका कर्म-क्षेत्र बढ़ते-बढ़ते अन्ततोगत्वा मेरे कर्म-क्षेत्र के तुल्य ही हो जाता है, अर्थात् उसका कर्म-क्षेत्र वही हो जाता है जो मेरा कर्म-क्षेत्र है। इस प्रकार मेरे भक्त और मुझ में कोई अन्तर नहीं रहता है। सूक्ष्म दृष्टि से इस रहस्य का यह तात्पर्य है कि भक्त और भगवान् मिलकर एक हो जाते हैं। अब उनके अस्तित्व उन्हें पृथक् पृथक् नहीं दिखाई देते। एक भगवान् का ही अस्तित्व सर्वत्र भान होने लगता है।

अतः भगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन, आत्मा को परमात्म-तत्व में लीन होने की योग्यता प्राप्त करने के लिये अब मैं तुझे यह सुनाना चाहता हूँ कि वह भक्त जिसका मन पूर्ण रूप से आत्मा में लगा हुआ है अर्थात् जो पूर्ण मनोयोग से मेरे (आत्मा के) आश्रय रहकर ही अपने समस्त कर्म करने का अभ्यास करता है उसको आत्मा के विस्तृत रूप का कैसे पूर्ण ज्ञान हो जावे जिससे कि उसे पुनः कोई शंका न रहे उसी जानकारी को तू सुन।[१]

---

१. श्री भगवानुवाच : मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रयः।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु।।१।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मैं तुझको यह ज्ञान, विज्ञान सहित अर्थात् व्यावहारिक रूप सहित सम्पूर्ण कहूँगा जिसको जानने के उपरान्त इस लोक में पुनः आत्म-ज्ञान सम्बन्धी अन्य जानकारी की कोई आवश्यकता ही नहीं रहती।[१]

यह विषय इतना गम्भीर है कि हजारों मनुष्यों में से कोई बिरला ही साधक इस ज्ञान की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करता है। उन यत्न करने वाले साधकों में से कोई ही साधक मुझको, अर्थात् आत्मा को तत्व से जानता है; अर्थात् आत्मा के वास्तविक मर्म का जानकार होता है।[२]

भाव यह है कि आत्म-तत्व के ज्ञाताओं की सत्संग के लिये भीड़ नहीं होती। यह विषय व्यक्ति के स्वयं के अनुभव से ही सम्बन्ध रखता है। यह अनुभव जिह्वा से ज्यों का त्यों नहीं कहा जा सकता। अतः प्रत्येक साधक स्वयं ही अपना अपना अनुभव रखता है, यद्यपि मूल लक्ष्य में भेद नहीं होता। जैसे देवदर्शन दो, चार, दस अथवा अनेक व्यक्ति एक साथ कर सकते हैं, वैसे ही आत्मानुभूति का दर्शन दो, चार, दस या अनेक व्यक्ति एक साथ या एक ही स्थान पर नहीं कर सकते।

चूँकि आत्मानुभूति करने वाला साधक दूसरे व्यक्ति के अनुभव से पूर्णतः परिचित हो ही नहीं सकता, अतः प्रत्येक आत्मानुभूति करने वाला साधक अपनी भाँति का स्वयं एक ही है। उसके प्रोत्साहन के लिए उसके जैसे शतप्रतिशत अनुभव के मनुष्य बिरले ही मिलेंगे। इसी दृष्टि से यह कहा जाता है कि आत्म-तत्व का ज्ञाता कोई बिरला ही होता है। वस्तुतः, आत्म-ज्ञान प्राप्त करना इतना कठिन नहीं है जितना कि आत्म-ज्ञान के एक से अनुभवी दो साधकों का मिलना। अतः प्रत्येक साधक अपने जैसे किसी दूसरे साथी की प्रतीक्षा न करते हुए स्वयं साधना करे। अस्तु, अब आत्म-तत्व का सम्पूर्ण रहस्य मैं स्पष्ट करता हूँ। तू भली प्रकार समझ ले।

---

१. ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते।।२।।

२. मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानांकश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः।।३।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

देखो अर्जुन, एक व्यक्ति दयालु है। वह दीन-दुःखी को देखते ही द्रवीभूत हो जाता है। भूखे को भोजन देता है। प्यासे को पानी पिलाता है। यह उसकी प्रकृति है। 'दयालुता' उसकी प्रकृति के अनेक गुणों में से एक है। वस्तुतः व्यक्ति की प्रकृति उसके अस्तित्व से भिन्न है। व्यक्ति पृथक् अस्तित्व रखता है और उसकी प्रकृति पृथक्। देखने में प्रकृति तो नहीं दिखाई देती, केवल व्यक्ति ही दिखाई देता है। यदि व्यक्ति को हम 'व्यक्ति' न कहते हुए उसकी आत्मा को 'व्यक्ति' की भाँति ही सम्बोधन करें तो 'व्यक्ति' की जो प्रकृति है वह अब 'आत्मा' की प्रकृति कही जा सकती है। इस प्रकृति के, जो आत्मा से भिन्न है, दो भेद हैं - परा और अपरा। अस्तु, अब मैं तुझे पहिले 'अपरा' से परिचित कराता हूँ। तू समझने का प्रयत्न कर।

आत्म-तत्व का साङ्गोंपाङ्ग वर्णन

देखो अर्जुन, अपरा प्रकृति आठ तत्वों का मिश्रण है। ये तत्व, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार कहे जाते हैं।[1]

अपरा प्रकृति

इनमें से प्रथम पाँच अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश को स्थूल शरीर व अंतिम तीन अर्थात् मन, बुद्धि और अहंकार को तू चाहे तो सूक्ष्म शरीर कह सकता है। इस प्रकार आत्मा की इस प्रकृति को 'स्थूल व सूक्ष्म' शरीर भी कह सकते हैं।

यह स्थूल व सूक्ष्म शरीरधारी प्रकृति चूँकि अधिक समीपवर्ती दृष्टि गोचर होती है, अतः यह 'अपरा' प्रकृति कहलाती है। इस 'अपरा' प्रकृति के अतिरिक्त आत्मा की जो दूसरी 'परा' प्रकृति है अब तू उसे भी समझ ले।

यह 'परा' प्रकृति अति ही सूक्ष्म है और समीप नहीं दिखाई पड़ती। अतः हे महाबाहो अर्जुन, इस प्रकृति को 'परा' प्रकृति कहते हैं। इसी को जीवात्मा भी कहते हैं जो (आसक्ति से) इस जगत को धारण किये हुए है।[2]

परा प्रकृति

---

१. भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।।४।।

२. अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्।।५।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

देखो अर्जुन जीवात्मा का स्वरूप आत्मा सदृश ही है। केवल अन्तर इतना ही है कि जीवात्मा स्थूल व सूक्ष्म शरीर पर आसक्त होकर उसे अज्ञानता से अपना कहता है और उसके दुःख में दुःखी और सुख में सुखी रहता है।

अब यदि अखिल ब्रह्माण्ड के समस्त प्राणियों की विवेचना तू समष्टि रूप से करे तो समस्त प्राणियों की आत्माऐं मिलकर तुझे एक हुई अनुभव होंगी। इन मिली हुई आत्माओं को तू परमात्मा कह सकता है। इस प्रकार प्राणियों के समस्त स्थूल व सूक्ष्म शरीर को मिलाकर अनुभव करे तो तू उस मिले हुए स्वरूप को जगत कह सकंता है। ऐसे ही समस्त प्राणियों के आसक्तियुक्त अपनेपन के भावों को तू सम्पूर्ण जगत का जीवात्मा कह सकंता है। सत्य ही, यदि तू अखिल ब्रह्माण्ड को एक प्राणी समझता है तो उसकी आत्मा को परमात्मा और स्थूल व सूक्ष्म शरीर को उसकी अपरा प्रकृति एवं उस स्थूल व सूक्ष्म शरीर से अपनेपन के भाव को व्यक्त करने वाले जीवात्मा को उसकी परा प्रकृति तुझे कहना होगी। अस्तु, विवेचन से, तू स्पष्ट समझ गया होगा कि परमात्मा की प्रकृति के दो भेद हैं, एक परा और दूसरी अपरा। अब तू यह भी समझ ले कि जगत का मूल आधार परमात्मा ही है।

जगत का मूल आधार परमात्मा

देखो अर्जुन, परा और अपरा दोनों प्रकृतियों से ही सम्पूर्ण भूतों की उत्पत्ति होती है, अर्थात् समस्त जगत की ये दोनो प्रकृतियाँ हीं योनियाँ हैं, जिनसे उनकी उत्पत्ति होती है। चूँकि परमात्मा की ही ये दोनो प्रकृतियाँ हैं, अतः प्रकृतियों के द्वारा किए हुए कार्यों को परमात्मा का ही कार्य कह दिया करते हैं। जैसे कि व्यक्ति विशेष की प्रकृति द्वारा किये हुए काम को उसकी प्रकृति का काम नहीं बल्कि उस व्यक्ति का ही काम कहते हैं। अतः परमात्मा इस जगत का मूल कारण कहा जाता है। यथार्थ में परमात्मा केवल साक्षी अथवा द्रष्टा है। उसकी परा एवं अपरा प्रकृतियाँ जगत की उत्पत्ति अथवा प्रलय का कारण हैं। चूँकि ये दोनो प्रकृतियाँ परमात्मा की हैं अतः परमात्मा ही वस्तुतः जगत की उत्पत्ति व प्रलय का कारण है।[1] इसी तथ्य को तू यूँ भी कह सकता है कि सम्पूर्ण जगत का मूल और

---

१. एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा।।६।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अंत मैं ही हूँ। क्योंकि, आत्म-स्वरूप में स्थित होने के कारण, परमात्मा के लिये ही "मैं" अपने स्वरूप को सम्बोधन कर रहा हूँ।

अस्तु, जगत की उत्पत्ति एवं प्रलय के कारण का भी कारण और जगत के व्यापार का साक्षी एवं द्रष्टा वस्तुतः परमात्मा है अर्थात् जगत का मूल आधार परमात्मा ही है, उसके अतिरिक्त और कोई नहीं है। जैसे कि माला के सूत्र में मणिगण (गुरिया) गुथे (पिरोए) रहते हैं, वैसे ही एक व्यक्ति में उसकी परा और अपरा प्रकृतियाँ गुथी रहती हैं। इसी प्रकार से परमात्मा में समस्त जगत की परा और अपरा प्रकृतियाँ पिरोई हुई हैं। जैसे माला में मणिगण, सूत्र से पृथक दिखाई देते हैं, यद्यपि वे मणिगण सूत्र के आधार से ही माला में स्थिर हैं, वैसे ही परा और अपरा प्रकृतियाँ (स्थूल व सूक्ष्म शरीर) एवं इनमें आसक्त रहने वाला जीवात्म-भाव (अहंभाव) आत्मा से पृथक है, यद्यपि उनका यानी परा और अपरा प्रकृतियों का अर्थात् स्थूल व सूक्ष्म शरीर एवं जीवात्म-भाव का आधार आत्मा ही है। अस्तु, हे अर्जुन, मुझसे श्रेष्ठतर दूसरा कोई भी नहीं है। वस्तुतः सूत्र में मणिगण के समान यह सब मुझमें पिरोया हुआ है। हाँ इसका अनुभव बुद्धि से ही हो सकता है।

सम्पूर्ण पदार्थों में परमात्मा की व्यापकता

वस्तुतः हे अर्जुन, प्रत्येक वस्तु में आधार रूप से परमात्म-शक्ति का अस्तित्व है जो स्पष्ट दृष्टिगोचर नहीं होता, किन्तु, बुद्धि से अनुभव हो सकता है। उदाहरणार्थ जैसे जल में रस (तरलता); चन्द्रमा और सूर्य में प्रकाश; सम्पूर्ण वेदों में प्रणव अर्थात् ऊँकार; आकाश में शब्द (ध्वनि); मनुष्यों में पुंसत्व अथवा पराक्रम (साहस); पृथ्वी में पवित्र गंध; अग्नि में तेज; सब प्राणियों में जीवनशक्ति, तपस्वियों में तप व्याप्त हैं, वैसे ही समस्त जगत परमात्मा से व्याप्त है, अर्थात् हे पार्थ, समस्त प्राणियों का सनातन बीज परमात्म-रूप से मैं ही हूँ। बुद्धिमानों की बुद्धि; तेजस्वियों का तेज मैं ही हूँ। हे अर्जुन, बलवानों का वासना और आसक्ति रहित

---

१. मत्तः परतरं नान्यत् किन्चदस्ति धनन्जय
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव।।७।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बल एवं प्राणियों में स्वधर्म-पालन रूप धर्मानुकूल काम (संकल्प) मैं ही हूँ।[१] भाव यह है कि यदि सूक्ष्म दृष्टि से तू देखे तो सम्पूर्ण जगत का सम्बन्ध परमात्म-तत्व से यानी मुझ से ही है। अस्तु, सत्वगुण, रजोगुण एवं तमोंगुण से उत्पन्न होने वाले भावों को तू परमात्मा से ही उत्पन्न होने वाले समझ। किन्तु, यह अवश्य ध्यान में रख कि न तो इन तीनों गुणों से उत्पन होने वाले भावों में परमात्मा है और न परमात्मा में इन तीनों गुणों से उत्पन्न होने वाले भाव है। ये तीनों गुण परमात्म-तत्व से सर्वथा पृथक् है।[२]

देखो अर्जुन, तूने अनुभव किया होगा कि एक व्यक्ति जो अपनी देह में आसक्त है वह अपने संकल्पों की उधेड़बुन में लगा रहता है, अर्थात् तीनों गुणों के भावों तल्लीन रहता है। उसके मन में यह विचार नहीं उठता कि शुद्ध, निर्विकारी आत्मा शरीर में किस प्रकार साक्षी रूप से उसके सब कार्यों को देख रही है तथा किसकी सत्ता से उसकी स्थूलदेह, सूक्ष्मदेह तथा उसके अहंभाव का अस्तित्व है। अस्तु, समस्त जगत ही सत्वगुण, रजोगुण अथवा तमोगुण के भावों से उत्पन्न संकल्पों से मोहित हो रहा है, अर्थात् तीनों गुणों के कार्यों में तल्लीन रहता है। वस्तुतः यह जगत इन तीनों गुणों से युक्त अपनी विचारधारा में इतना मोहित हो रहा है कि वह अपने आधार-भूत अविनाशी परमात्म-तत्व को बुद्धि से जानने की चेष्टा ही नहीं करता।[३]

---

१. रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु।।८।।
पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ।
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु।।९।।
बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम्।।१०।।
बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम्।
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ।।११।।

२. ये चैव सात्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये।
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि।।१२।।

३. त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत्।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम्।।१३।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सत्य ही, परमात्म-तत्व से अपरिचित रहने को ही अज्ञान में रहना अथवा दैवी माया के चक्र में पड़े रहना कहते हैं। अतः तू इस दैवी माया को भली प्रकार से समझले जिससे तू अज्ञान को दूर कर सके।

दैवी माया तथा उससे मुक्त होने का उपाय

देखो अर्जुन, तू परमात्मा की दोनों प्रकृतियों से यानी 'परा' और 'अपरा' से परिचित है ही। इन परा और अपरा प्रकृतियों से उत्पन्न क्रिया-कलाप को वस्तुतः माया कहते हैं। चूँकि ये प्रकृतियाँ परमात्मा की हैं, अतः वे दैवी कही जाती हैं। अस्तु, इन प्रकृतियों के क्रिया-कलाप भी दैवी हैं। साथ ही यह परमात्मा की माया तीनों गुणों से युक्त है, अतः उसे त्रिगुणमयी दैवी यानी नैसर्गिक माया कहते हैं। वे व्यक्ति जो इस माया में यानी तीनों गुणों में पूर्णतः लिप्त हैं उनके लिये यह माया बड़ी दुस्तर है, अर्थात् वे बड़ी कठिनाई से ही इस माया को पार कर सकते हैं। किन्तु, वे महानुभाव परमात्मा की इस दुस्तर माया से अनायास ही पार हो सकते हैं जो मेरे को निरन्तर भजने वाले, शरणागत भक्त हैं, अर्थात् मेरी ही भाँति उस आत्मा के भक्त हैं जो समस्त प्राणियों में समभाव से स्थित है। भाव यह है कि जैसे आत्मा कर्तृत्व-भावना से सर्वथा रहित है, केवल त्रिगुणात्मक माया के कार्य की साक्षी है, वैसे ही जो भक्त कर्तृत्व-भावना से सर्वथा रहित हैं, वे भी माया के कार्यों के साक्षी हैं। अतः जो साक्षी सदृश रह कर लोक-संग्रह के कर्म करते हैं वे इस माया से तर सकते हैं।[1] चूँकि इस माया का ही दूसरा नाम जगत (संसार) है, अतः वे व्यक्ति जो कर्तृत्व-भावना (अहंभाव) से रहित होकर कर्त्तव्य पालन करते हैं वे संसार से तर जाते हैं, अर्थात् सांसारिक दुःख-सुख से वे प्रभावित नहीं होते। किन्तु, यह एक बड़ी अद्भुत बात है कि जब भगवान् की भक्ति से प्रत्येक व्यक्ति संसार से तर सकता है तब प्रत्येक व्यक्ति को ही भगवान् का भक्त बनना चाहिये। परन्तु, ऐसा सर्वत्र नहीं देखा जाता। अतः तू इस रहस्य को भी समझले कि किस प्रकार के व्यक्ति भगवान् के भक्त नहीं बनना चाहते।

---

१. दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।।१४।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

देखो अर्जुन, प्रायः वे व्यक्ति भगवान् के भक्त नहीं बनना चाहते जिनके आत्म-ज्ञान को माया ने हर लिया है, अर्थात् जो "मैं और मेरा" "तू और तेरा" के चक्कर में पड़े हुए हैं। जो मूढ हैं, अर्थात् अशुद्ध अन्तःकरण के कारण अपने को कर्म का कर्त्ता मानते हैं। जिनको इतनी भी बुद्धि नहीं कि वे अपने स्थूलशरीर, सूक्ष्मशरीर, जीवात्मा और आत्मा के रहस्य को स्पष्ट जान लें। चूँकि बुद्धि से ही मानव की परख होती है, अतः जिन मानवों की बुद्धि अपने-अपने स्वरूप को नहीं जान पाती उनकी गणना श्रेष्ठ मनुष्यों में नहीं की जाती, अतः वे नराधम (तुच्छ नर) हैं। जो व्यक्ति दूसरों के अधिकार छीनने का प्रयत्न करते हैं वे व्यक्ति दूषित कर्म करने वाले होते हैं। चूँकि स्थूल, सूक्ष्म शरीरादि वास्तव में हैं तो त्रिगुणामक माया के ही किन्तु, जो व्यक्ति अपने शरीरों को त्रिगुणात्मक माया के न कह कर उनको अपना कहते हैं, वे निस्सन्देह दूषित कर्म करने वाले हैं। चूँकि अनधिकार वस्तु पर अधिकार करने का काम असुरों का होता है, अतः ऐसे व्यक्ति जो दूसरों के अधिकारों को छीनने का प्रयत्न करते हैं उन्हें आसुर भाव के आश्रित समझना चाहिए। अस्तु, विवेचन से तुझे स्पष्ट हो गया होगा कि चार प्रकार के व्यक्ति अर्थात् नराधम, दूषित कर्म करने वाले, माया से जिनका ज्ञान आच्छादित है तथा जो मूढ़, यानी पापकर्म करने वाले, अर्थात् अशुद्ध अन्तः-करण वाले हैं वे मुझे, अर्थात् प्राणिमात्र में एकीभाव से स्थित परमात्व-तत्व को नहीं भजते, अर्थात् वे आत्मानुरागी होने की चेष्टा नहीं करते।[1] अब तू यह भी जान ले कि वें व्यक्ति कौन कौन से होते हैं जो भगवान् के भक्त बनने की चेष्टा करते हैं।

भगवद् भक्ति से विमुख व्यक्ति

देखो अर्जुन, सम्भवतः तेरे अनुभव में यह आया होगा कि जब तक सकामी शुभ कर्म करने वाले व्यक्ति को अपना बल अथवा अन्य व्यक्तियों का बल रहता है तब तक वह परमात्मा की अधिक आवश्यकता अनुभव नहीं करता। साधारण रूप से ही भजन, पूजन आदि करता रहता है। किन्तु, जब वह सब ओर से निर्बल हो

भगवद् भक्ति के आतुर व्यक्ति

---

१. न मां दुष्कृतिनो मूढ़ाः प्रपद्यन्ते नराधमाः।
माययापहत ज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः।।१५।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जाता है तब उसके मुख से स्वयमेव भगवन्नाम सच्चाई से निकलने लगता है और उसे विश्वास हो जाता है कि सचमुच निर्बल के बल 'राम' ही है। अस्तु, व्यक्ति जब आर्त्त हो जाता है तब अपने कष्ट निवारण के हेतु सच्चाई और आत्म-विश्वास से प्रभु स्मरण करता है। प्रभु कृपा से जब उसका कष्ट दूर हो जाता है तब उसे परमात्मा में पूर्ण विश्वास हो जाता है। अस्तु, ऐसा आर्त्त जिसका कष्ट भगवान् की कृपा से नष्ट हो जाता है उस पर जब-जब भी पुनः स्वार्थ-सिद्धि का प्रसंग उपस्थित होता है तब तब ही वह सत्य-भावना से प्रभु-स्मरण कर अपने संकल्प में दृढ़ता लाता है। परिणाम-स्वरूप उसके स्वार्थ सिद्ध होने लगते हैं। अतः वह आर्त्त भक्त ही अब अर्थार्थी भक्त हो जाता है। जब यह अर्थार्थी भक्त बारम्बार प्रभु स्मरण से अपनी मनोकामनाओं को पूर्ण होते देखता है तब उसको स्वयं ही परमात्मा के रहस्य को जानने की इच्छा उत्पन्न होती है कि भगवान् के स्मरण में ऐसी कौनसी शक्ति है जिससे मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं। अतः वही अर्थार्थी भक्त अब जिज्ञासु भक्त बन जाता है। जिज्ञासु भक्त मनन करते-करते अन्त में परमात्म-तत्व का रहस्य भली प्रकार से समझ जाता है कि सूक्ष्म शरीर किस प्रकार से अनुकूल वायुमण्डल निर्माण करके स्थूल शरीर को साधन बना कर मनोरथ सिद्ध होने में योग देता है तथा वह स्वयं सूक्ष्म शरीर के समस्त कार्यों का द्रष्टा है। जब जिज्ञासु भक्त कर्म का द्रष्टा बन कर कर्म करता है तब वह अपने को कर्म का कर्त्ता नहीं मानता। कर्त्तापन्न से ही दुःख-सुख आया करते हैं। अतः वह दुःख-सुख से निवृत्त हो जाता है। इस स्थिति पर पहुँचकर वही जिज्ञासु भक्त अब ज्ञानी भक्त बन जाता है। अतः इस संसार में फलेच्छा से शुभ कर्म करने वाले कुछ आर्त्त भक्त दिखाई देते हैं, तो कुछ आर्त्त भक्त से ऊपर उठे हुए अर्थार्थी भक्त दिखते हैं। साथ ही कुछ भक्त ऐसे देखे जाते हैं जो अर्थार्थी से भी ऊपर उठ गए हैं, जिन्हें जिज्ञासु कहते हैं। और कुछ ऐसे भी भक्त देखे जाते हैं जो जिज्ञासु से भी ऊपर उठ गए हैं जिन्हें ज्ञानी भक्त कहते हैं। इस प्रकार से अपनी-अपनी भक्ति के स्तर से ये भक्तगण पृथक्-पृथक् स्तर के कहे जाते हैं। अस्तु, हे अर्जुन स्पष्ट है कि चार प्रकार के उत्तम कर्म करने वाले भक्त होते हैं। जिन्हें आर्त्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु और ज्ञानी कहते हैं, क्योंकि इन चारों प्रकार के भक्तों की आराध्य शक्ति मेरी शक्ति से

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भिन्न नहीं है अतः ऐसा कहने में अतिशयोक्ति नहीं कि ये चारों मेरे ही भक्त हैं जो मेरे को भजते हैं।[१] हाँ इतना अवश्य है कि इन चारों भक्तों में भी ज्ञानी भक्त क्यों श्रेष्ठ होता है इस तथ्य को भी तू समझले।

भक्तों में ज्ञानी की श्रेष्ठता

वैसे तो आर्त्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु और ज्ञानी चारों ही उत्तम भक्त हैं, किन्तु ज्ञानी भक्त सर्वोत्तम है, क्योंकि वह नित्य ही अनन्य भाव से आत्मा की भक्ति करने वाला है, अर्थात् आत्म-रूप में स्थिर रह कर लोकसंग्रह का कर्म भली प्रकार से करता है; उसको निर्लिप्त-आत्मतत्व की स्थिति में रहना अत्यन्त प्रिय लगता है। चूँकि सम्पूर्ण परमात्म तत्व से भिन्न ज्ञानी भक्त को अपनी आत्मा नहीं अनुभव होती, अतः ज्ञानी का संयोग नित्य ही परमात्व-तत्व से रहता है। इसी तथ्य को यूँ भी कहा जा सकता है कि परमात्मा ज्ञानी से प्रेम करता है और ज्ञानी परमात्मा से प्रेम करता है। अस्तु, स्पष्ट है कि चारों भक्तों में नित्य मुझमें लीन रहने वाला और एक मात्र मेरी भक्ति करने वाला ज्ञानी भक्त श्रेष्ठ है। वस्तुतः उसे मैं अत्यन्त प्रिय हूँ और वह मेरा प्यारा है।[२]

ये चारों प्रकार के भक्त उदार कहे जाते हैं। वे अब एक दो घन्टे को भगवान् का आश्रय नहीं लेते बल्कि अब चौबीसों घन्टे ही भगवान् का श्रद्धा से स्मरण करते हुए अपनी-अपनी दिनचर्या का पालन करते रहते हैं। अस्तु, यदि तू मुझसे पूछे तो हे अर्जुन, मेरा तो यही मत है कि ज्ञानी भक्त मेरा जैसा ही है। वह बिल्कुल मेरी तरह से ही आत्म-स्वरूप में स्थित रहकर लोक-संग्रह के कर्म करता है। वह युक्तात्मा अर्थात् विक्षेप रहित चित्त वाला होकर मेरी सर्वोत्तम गति में वर्तता है, अर्थात वह मुझमें

---

१. चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ।।१६।।

२. तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः।।१७।।
उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम्।।१८।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ही स्थित रहता है।[१]

साथ ही, जैसे अति उत्तम समस्त स्मृतिचिह्न मेरे में विद्यमान हैं वैसे ही उसमें भी विद्यमान रहते हैं। निस्संदेह, ऐसे ज्ञानी महात्मा का मिलना अत्यन्त कठिन है जो प्राणिमात्र के समस्त आत्म-भावों को एक ही आत्मा के रूप में मिला हुआ अनुभव करता हो। जो अखिल ब्रह्माण्ड में अपनी आत्मा का सर्वत्र विस्तार इसी प्रकार देखता हो जैसे कि मैं समस्त संसार में व्याप्त अपने को अर्थात् वासुदेव को, यानी सब में वास करने वाली आत्मा के स्वरूप को ही देखता हूँ, अर्थात् मुझे मेरी आत्मा का ही विस्तार सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है, क्योंकि यह सब कुछ वासुदेव (आत्मा) ही है उसके अतिरिक्त अन्य कुछ महत्वपूर्ण है ही नहीं। ऐसे तत्व ज्ञानी की योग्यता अनेक जन्मों के योगाभ्यास के परिणाम-स्वरूप जब ज्ञानी को प्राप्त होती है तब वह मुझे प्राप्त कर लेता है। वस्तुतः ऐसा महात्मा दुर्लभ है।[२]

सचमुच ऐसे ज्ञानी का वह जन्म अंतिम होता है, क्योंकि इस योग्यता का परिणाम यह होता है कि योगी को फिर जन्म नहीं लेना पड़ता, अर्थात् उसकी जन्म से ही मुक्ति हो जाती है। वस्तुतः, जन्म-मरण का अनुभव उसी जीवात्मा को होता है जो अपने स्थूल व सूक्ष्म शरीर में आसक्त होता है। चूँकि आत्मा का न जन्म है न मृत्यु, अतः वह सदैव नित्य है। इसी कारण जीवात्मा जब परमात्म-तत्व में स्थित हो जाता है तब वह भी 'नित्य' ही कहलाता हैं। उसका भी न तो जन्म होता है न मृत्यु। किन्तु, जो भक्त मेरे सदृश आचरण नहीं करते कि यह सब कुछ वासुदेव (आत्मा) ही है वे विभिन्न वासनाओं से प्रेरित होकर विभिन्न देवतागण को अपना आश्रय बनाते है। अस्तु, वे लोग अपने-अपने स्वभावानुसार विभिन्न कामनाओं के वशीभूत होकर जिस-जिस देवता की जिस-जिस विधि द्वारा उपासना करने से जो फल प्राप्त होता है उस-उस देवता की जो जो नियमानुसार पूजन विधि होती है उस-उस से उसकी आराधना करते हैं अर्थात वे विभिन्न देवताओं को भजते रहते हैं।

---

१. बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः।।१६।।

२. कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया।।२०।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ऐसे उपासक जो देवताओं की भक्ति में अटके रहते हैं उनकी कैसी गति होती है अब यह भी तू अर्जुन, जानना चाहता होगा, अतः अब मैं देवताओं के उपासकों की कैसी गति होती है उसे भी स्पष्ट कहता हूँ।

देवताओं के उपासकों की गति

देखो अर्जुन, तू यह तो जानता ही है कि तेतीस कोटि देवता प्रायः प्रसिद्ध हैं। इन देवताओं के रूप को तू मेरे ही शरीर के विविध रूप समझ। क्योंकि मेरी, अर्थात् वैष्णवी शक्ति की सत्ता के बिना इनका अस्तित्व ही नहीं। अस्तु जो व्यक्ति सकामी होते हैं उनकी वासनाऐं इतनी प्रबल होती हैं कि उनकी पूर्ति के हेतु जो कोई उनसे कहता है कि अमुक देवता की उपासना से उनकी मनोकामना शीघ्र पूर्ण हो जावेगी तो वे तत्काल उसी पर ही विश्वास कर लेते हैं। उन्हें यह ज्ञान नहीं रहता कि सभी देवताओं की शक्तियों का आधार एक-मात्र परमात्म-शक्ति है, अतः उन्हें परमात्मा की ही शरण जाना चाहिये। किन्तु, वे आत्मा की शरण में न जाकर अपने स्वभावानुकूल वासनाओं की प्रबलता के कारण उन देवताओं की शरण में जाते हैं जिनसे उनकी वासनाओं की पूर्ति होती हुई उन्हें दिखाई देती है। परिणामस्वरूप वे देवताओं को सिद्ध करते हैं और उनको सिद्ध करने के लिये जो-जो नियम प्रचलित होते हैं उन्हीं-उन्हीं नियमों के अनुकूल वे आचरण करते हैं।

चूँकि वे एकाग्र चित्त से देवता की उपासना करते हैं, अतः उनकी वासना के संकल्प वैष्णवी शक्ति की सत्ता से एकत्रित होकर पुष्ट हो जाते हैं। परिणामस्वरूप पुष्ट संकल्प तदनुकूल आचरण करने में दृढ़ता ला देते हैं। इस प्रकार वायुमण्डल निर्माण होने से संकल्प की भी सिद्धि हो जाया करती है। अस्तु, जो-जो सकामी भक्त जिस-जिस देवता के स्वरूप में मुझको यानी वैष्णवी शक्ति को श्रद्धा से पूजना चाहते हैं उस-उस सकामी भक्त की जो श्रद्धा उस देवता में होती है उसको मैं ही, अर्थात् वैष्णवी शक्ति की सत्ता ही स्थिर करती है'

श्रद्धा स्थिर होने पर वह सकामी व्यक्ति श्रद्धा से उस देवता के

---

१. यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्।।२०।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पूजने की चेष्टा करता है और मेरे द्वारा ही अर्थात् वैष्णवी शक्ति के द्वारा ही उस देवता के रूप से उसे निस्संदेह, उसका इच्छित फल प्राप्त हो जाता है, जब कि उसे यह तथ्य विदित नहीं होता कि उसकी इच्छा मेरे द्वारा ही सिद्ध हुई है।[1]

वस्तुतः मनुष्य की एक ही इच्छा तो होती नहीं। वह इच्छाओं का भण्डार है। एक इच्छा की पूर्ति हुई कि तुरन्त ही उसका स्थान दूसरी इच्छा ले लेती है। अतः सकामी व्यक्ति की एक इच्छा के पूर्ण होने का फ़ल रूपी सुख बहुत ही अल्पकाल तक रहता है। इस प्रकार इच्छाओं के समस्त फल शीघ्र नाश हो जाया करते हैं। साथ ही वे अल्प शक्ति वाले देवताओं का आश्रय लेते हैं। अतः जिस देवता की शरण लिए हुए सकामी व्यक्ति का शरीर छूटता है तो उसी देवता की मनोवृत्ति लिये ही वह पुनः जन्म लेता है। इस प्रकार सकामी व्यक्ति का प्रयास उसको सीमित क्षेत्र में रखता है और पूर्ण शांति एवं सुख प्राप्त कराने में असमर्थ है। किन्तु, जो व्यक्ति आत्म-तत्व में स्थिर रहते हुए कर्म करते हैं वे कर्तृत्व भावना से सर्वथा मुक्त रहते हैं। परिणामतः वे स्थायी सुख एवं शांति का अनुभव करते हैं। साथ ही चूँकि वे आत्म-तत्व के ही आश्रित रहते हुए शरीर छोड़ते हैं, अतः आत्म-तत्व के आश्रय की मनोवृत्ति लिये ही उनका पुनर्जन्म होता है। इस प्रकार जन्म लेने पर भी उनकी शांति भंग नहीं होती। मेरे सदृश ही अवतार लेकर वे लोकहित करते हैं। चूँकि सकामी देवताओं के पूजने वाले-व्यक्ति इस तथ्य से अपरिचित होते हैं अतएव वे मेरे भक्त न होकर देवताओं के ही भक्त होते हैं। यद्यपि देवताओं के उपासकों के मनोरथों का फल अस्थायी यानी अन्त वाला होता है तथापि उनकी आसक्ति देवताओं में होती है। अतः देवताओं के उपासक देवताओं की वृत्ति को प्राप्त होते हैं और मेरी वृत्ति के उपासक, अर्थात् आत्म-तत्व के उपासक मेरी वृत्ति को जो सच्चिदानन्द स्वरूप है, प्राप्त होते हैं अर्थात् आत्म-तत्व में स्थिर रहने की वृत्ति को प्राप्त होते हैं।[2]

---

१. स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते।
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हि तान्।।२।।

२. अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम्।
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि।।२३।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यदि अर्जुन, तू यह सोचता हो कि जब आत्म-तत्व का उपासक पूर्ण सुख एवं शांति को प्राप्त करता है तो जन साधारण आत्म-तत्व का ही उपासक क्यों नहीं होता इसमें क्या रहस्य है? अस्तु, अब मैं तुझे इस रहस्य का कारण भी स्पष्ट करता हूँ। तू भली प्रकार समझ ले।

देखो अर्जुन, अविनाशी परमात्म-तत्व से प्रभावित होकर समय समय पर लोकहितार्थ वैष्णवी शक्ति का एक वृहत् भाग अवतार लेता है।

> ज़न साधारण का परमात्म-तत्व (परमेश्वर की) शरण में न जाने का कारण

कुछ लोग ऐसे होते हैं जिनकी कि बुद्धि गहराई में उतर कर वस्तु स्थिति का अवलोकन नहीं कर पाती। जब वे अवतारी महापुरुष की चमत्कार पूर्ण महान् शक्ति का अनुभव करते हैं तब वे ऐसी धारणा करने लगते हैं कि इस व्यक्ति के रूप में भगवान ने अवतार लिया है यानी अब भगवान् प्रकट हुए हैं, पहिले भगवान् नहीं थे। अस्तु, मेरे जन्म के सम्बन्ध में अज्ञानी व्यक्ति ऐसा समझते हैं कि भगवान् पहिले व्यक्त नहीं थे अर्थात् प्रकट नहीं थे, अब प्रकटे हैं अर्थात् मैंने अब जन्म लिया है। क्योंकि वे मेरी सर्वोत्तम, अविनाशी, परमात्म-सत्ता से परिचित नहीं हैं।[1] वस्तुतः उनमें इतनी विवेक-पूर्ण बुद्धि नहीं होती कि वे इस तथ्य को मनन करके भली प्रकार समझलें कि परमात्मा नित्य है। वह जन्म नहीं लेता है। हाँ; उसकी वैष्णवी सत्ता से विशेष लोकहित के कार्य हेतु अवतारी पुरुष का आविर्भाव होता है। और उस विशेष लोक-हित के कार्य के पूर्ण होते ही वह अवतारी पुरुष अपना शरीर छोड़ कर पुनः वैष्णवी शक्ति में ही लीन हो जाता है। इस प्रकार प्रायः जन साधारण योगमाया से ढका हुआ है। अतः मैं सब के लिये प्रकट नहीं हूँ यही कारण है कि उस जगत के अज्ञानी लोग प्रायः मुझ अजन्मा और अविनाशी को नहीं जान पाते।[2]

---

१. अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मान्यते मामबुद्धयः।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम्।।२४।।

२. नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।
मूढ़ोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम्।।२५।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वस्तुतः वे परमात्म-तत्व के परम भाव से अपरिचित रहते हैं, और त्रिगुणात्मक माया के चक्र में फँसे रहते हैं, अर्थात् वे आसक्ति से इसी में लगे रहते हैं कि अमुक कार्य अशुभ है और अमुक कार्य शुभ है। यह कर्म करना चाहिये और अमुक कर्म करना उचित नहीं। इन कर्मों में अत्यन्त आसक्ति के कारण वे सत्संग नहीं कर पाते। सत्संग के अभाव में उनका ध्यान परमात्म-तत्व की ओर आकर्षित नहीं हो पाता। सत्य ही, मैं, आत्म-तत्व में ही सदैव स्थित रहते हुए ही लोकहित कार्य करता हूँ। मैं समस्त प्राणियों की आत्माओं को अविभाजित रूप से एक ही आत्मा है, ऐसा स्पष्ट अनुभव करता हूँ। इस आत्म-विवेक के कारण वर्तमान काल में जिन-जिन जीवों ने जन्म लिया है और भूतकाल में जिन-जिन प्राणियों ने जन्म लिया था एवं भविष्य-काल में जो-जो जीव जन्म लेंगे उन सब प्राणियों से मेरा साक्षी के सदृश परिचय है। क्योंकि मैं उसी नित्य आत्मसत्ता में स्थित रहता हूँ जिसकी सत्ता बिना जीव का वर्तमान, भूतकाल अथवा भविष्य-काल में अस्तित्व ही नहीं। यह गूढ़ रहस्य है इसे कोई भी अविवेकी व्यक्ति नहीं जान सकता। अस्तु, हे अर्जुन, मैं तो वर्तमान, भूत और भविष्य तीनों कालों में होने वाले सब जीवों को जानता हूँ परन्तु मुझे कोई नहीं जानता।[१] क्योंकि प्रायः देखने में यही आता है कि जन साधारण इच्छित वस्तु को प्राप्त कर सुखी होना चाहता है और इच्छा के विपरीत कार्यों से द्वेष करता है। जब अनइच्छित कार्य हो ही जाते हैं तो वह दुःखी हो जाता है। अस्तु, वह इच्छा और द्वेष से उत्पन्न हुए सुख और दुःख के द्वन्द्व से मोहित रहता है। अर्थात् उसे यह सुध नहीं रहती कि परमात्व-तत्व प्राप्त करने से ही मानव सुख-दुःख से निर्द्वन्द्व होकर स्थायी शान्ति प्राप्त कर सकता है। चूँकि जीव द्वन्द्व से मोहित हुआ शरीर छोड़ता है अतः मोहित हुआ ही पुनः जन्म लेता है। अस्तु, यही कारण है कि हे भरतवंशी अर्जुन, इस संसार में जीव पूर्व संस्कारों के वशीभूत होकर मोह से अर्थात् इच्छा और द्वेष से उत्पन्न द्वन्द्व से मोहित हो रहे हैं।[२] और वे परमात्म-तत्व प्राप्त करने की चेष्टा नहीं करते।

---

१. वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन।।२६।।

२. इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत।
सर्वभूतानि संमोहं सर्गे यान्ति परंतप।।२७।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अब मैं यह तथ्य भी स्पष्ट रूप से तुझे समझाये देता हूँ कि मोह से आक्रान्त जीव परमात्म-तत्व प्राप्त करने को कब जागरूक होता है।

देखो अर्जुन, मन में उत्पन्न हुई इच्छाऐं वस्तुतः अग्नि के सदृश हैं। क्योंकि जैसे अग्नि की तृप्ति हेतु ज्यों-ज्यों घृत डाला जावेगा त्यों-त्यों ही अग्नि तृप्त होने की अपेक्षा और-और अधिक ही प्रबल होगी वैसे ही इच्छाओं को ज्यों-ज्यों पूर्ण करने का प्रयत्न किया जाता है त्यों-त्यों ही वे और-और अधिक उत्पन्न होती जाती हैं। अतः, ये इच्छाऐं कभी तृप्त होने वाली नहीं हैं। अस्तु, व्यक्ति अपनी वासनाओं को तृप्त करते-करते व्याकुल हो जाता है। राग द्वेष के मोह में फँसा हुआ व्यक्ति अकुलाने लगता है। फिर भी माया की प्रबलता इतनी अधिक होती है कि उसकी आसक्ति नहीं छूटती। मैं और मेरा; तू और तेरे के चक्कर में पड़ा हुआ अनेक जन्मों के उपरान्त अन्ततोगत्वा उसकी विषय भोगों में अरुचि होने लगती है क्योंकि कभी न कभी तो अन्त आता ही है। यही वह अवसर है जब कि व्यक्ति का आकर्षण परमात्मा की शरण जाने के हेतु सत्संग की ओर होने लगता है। क्षण मात्र के संस्कार का प्रभाव भी व्यर्थ नहीं जाता। सत्संग के संस्कार उस व्यक्ति पर पड़ने लगते हैं। वे संस्कार अनेक वर्षों में अथवा अनके जन्मों में इतने प्रबल हो जाते है कि व्यक्ति का अन्तः करण निर्मल होने लगता है। क्योंकि सत्संग में यही संस्कार पुष्ट होता है कि परमात्मा घट-घट वासी है। सब प्राणी एक से ही हैं। जीव-मात्र से स्नेह करना ही परमात्मा से प्रेम करना है ऐसी ही विचार-धाराओं के मनन का परिणाम यह होता है कि ईश्वरार्पण बुद्धि से कर्म करने वाले व्यक्ति में स्वयं को जानने का विवेक शनैः-शनैः जाग्रत होने लगता है। स्वयं की जानकारी करते-करते ही व्यक्ति अपने तीनों रूपों को यानी स्थूल, सूक्ष्म एवं आत्म-तत्व जो साक्षी के सदृश विद्यमान रहता है, पहिचानने लगता है। अब उसके योगाभ्यास की दिशा ईश्वरार्पण बुद्धि से परिवर्तित होकर आत्म-तत्व में अधिक हो जाती है। आत्म-तत्व में रुचि होने का परिणाम स्पष्ट रूप से यह होता है कि उस व्यक्ति में कर्तृत्व भावना (मैंपन) का लोप हो जाता

मोह से आक्रान्त जीवों की परमात्म-तत्व प्राप्त करने की उत्सुकता

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

है। समस्त कर्म करने की क्रिया त्रिगुणात्मक माया की है, यह अनुभव होने लगता है। वस्तुतः स्वयं को कर्म का कर्त्ता कहना ही पाप है। क्योंकि, जब व्यक्ति अपने को कर्म का कर्त्ता कहता है तो वह बल पूर्वक माया के अधिकार का अपहरण करता है। इस पर भी वह व्यक्ति स्वयं कर्म का कर्त्ता बनता है वह पापी है। अतः जिन शुभ कर्म करने वाले व्यक्तियों की कर्तृत्व भावना आत्म-तत्व के चिन्तन से समूल नष्ट हो गई है, जो राग द्वेष की भावनाओं से निर्द्वन्द्व हो गए हैं और जिनका आत्मा में अनुराग दृढ़ हो गया है, ऐसे दृढ़ व्रती योगी परमात्म-तत्व का ही निरन्तर चिन्तन करते हुए लोक-संग्रह हेतु कर्म करने वाले लोगों का पाप यानी 'मैंपन' नष्ट हो गया है वे राग-द्वेष के द्वन्द्व रूपी मोह से छूटे हुए दृढ़ता-पूर्वक मुझको भजते हैं, अर्थात् मेरे सृदश लोक-हित करते हैं।[१] वस्तुतः मानव जीवन चार भागों में विभक्त है- बचपन, युवावस्था, बुढ़ापा और मृत्यु। बचपन और युवावस्था तो सुखद लगती है, किन्तु वृद्धावस्था प्रायः सबको ही दुःखदाई प्रतीत होती है। इनमें भी मृत्यु सबसे भयंकर है। भयंकर होते हुए भी सबको मन से या बेमन से मृत्यु का सामना करना ही पड़ता है। अतः साधक, मानव जीवन की अंतिम दोनों दुःखद अवस्थाओं, अर्थात् वृद्धावस्था एवं मृत्यु से छुटकारा पाने के लिये मेरा आश्रय लेकर यत्न करते हैं, अर्थात् अविनाशी और अजन्मा आत्मा के आश्रय में मेरी ही भाँति रहने का प्रयत्न करते हैं। तब उनके सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि वे परब्रह्म, अर्थात् परमात्म-तत्व को जानते हैं। साथ ही वे समस्त अध्यात्म, अर्थात् प्रकृति एवं प्रकृति के समस्त कार्य से भली भाँति परिचित हैं।[२] क्योंकि इन तत्वों से परिचित होने पर ही साधक परमात्म-तत्व के चिन्तन का अनुरागी हो सकता है अन्यथा नहीं। यह वह स्थिति है जिस स्थिति में साधक अज और अविनाशी भाव में तल्लीन रहकर सब कुछ करते हुए भी स्थूल शरीर के जन्म से मृत्यु पर्यन्त तक की समस्त घटनाओं को साक्षीवत् देखा करता है।

---

१. येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः।।२८।।

२. जरामरणमोक्षाय मामश्रित्य यतन्ति ये।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम्।।२६।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सारांश यह है कि जो विक्षेप रहित, समाहित चित्त योगी मेरी भाँति ही परमात्म-तत्व को अधिभूत यानी स्थूल शरीर, अधिदैव यानी छोटी त्रिगुणात्मक माया, अर्थात् वे संस्कार जिनकी पूर्ति के लिये शरीर धारण किया है, और अधियज्ञ यानी त्रिगुणात्मक बड़ी माया जो अखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त है और प्रत्येक प्राणी के पृथक्-पृथक् संस्कारों की प्रेरक है इन सबके सहित जानते हैं, वे, यानी समाहित चित्त योगीजन, जिन्होंने लोकहित के लिये शरीर धारण किया है, शरीर को त्यागने के समय भी मुझको जानते हैं, अर्थात् मृत्यु के समय भी भली प्रकार से परमात्म-तत्व में स्थिर रहते हैं। तात्पर्य यह है कि उन्हें परमात्म-तत्व का यथावत् स्मरण बना रहता है और उन्हें मृत्यु भयंकर नहीं प्रतीत होती।१

ॐ शम्

---

१. साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः।
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः।।३०।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ॐ

आठवाँ अध्याय

अक्षर ब्रह्मयोग

अर्थात्

अविनाशी परम पद् प्राप्त
करने का प्रकरण।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अक्षर ब्रह्मयोग

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम्।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।।२१।।

इस परमात्म-तत्व को अव्यक्त अक्षर यानी व्यक्त न किया जाने वाला अविनाशी श्रेष्ठ तत्व कहा जाता है। और इसी तत्व को परमगति कहते हैं। इस स्थिति को प्राप्त होकर फिर लौटना नहीं होता, अर्थात् जन्म नहीं होता, यानी अविनाशी हो जाता है। यह स्थिति ही मेरा परमधाम है।।२१।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

८

श्रेष्ठ योगी की मृत्यु के समय आत्म-स्वरूप में स्थिर रहने की विधि एवं आत्म-स्वरूप का विस्तृत विवरण सातवे अध्याय में पाठक पढ़ ही चुके हैं। अब आठवे अध्याय में ब्रह्म, अध्यात्म, कर्म, अधिभूत अधिदैव, अधियज्ञ का वास्तविक अर्थ समझाते हुए भगवान् श्रीकृष्ण अविनाशी परमात्म-पद की प्राप्ति का उपाय बतलावेंगे। साथ ही वे उस काल की प्रचलित कसौटियों का भी वर्णन करेंगे जिनके द्वारा योगीजन यह जानने का अनुमान लगाते थे कि देह त्यागने के उपरान्त देह त्याग कर जाने वाले योगी को परम पद प्राप्त हुआ अथवा नहीं। अन्त में वे अपने सिद्धान्त को स्पष्ट करेंगे जिसके आचरण से साधक की कभी भी मृत्यु हो जावे वह सहज ही अविनाशी परम पद का अधिकारी हो सकता है।

जब अर्जुन को भगवान् का दिया गया वह उपदेश जिसके आचरण से श्रेष्ठ योगी अन्तकाल में भी आत्म-स्वरूप में स्थिर रह सकता है तथा अधिभूत, अधिदैव, अधियज्ञ सहित वह उनको जान भी सकता है आदि का प्रसंग स्मरण हो आया था तब उसे यह भी स्मरण होने लगा कि इसके उपरान्त उसने भगवान् से अधिभूत, अधिदैव आदि के रहस्यों के विषय में पूछा था। अस्तु, वेदव्यास जी अर्जुन से ही प्रश्न करा रहे हैं कि हे पुरुषोत्तम भगवान् ! मुझे यह समझाकर अनुगृहीत कीजिये कि ब्रह्म क्या है? अध्यात्म क्या है? कर्म किसे कहते हैं? और अधिभूत एवं अधिदैव किन्हें कहते हैं? हे मधुसूदन ! अधियज्ञ इस देह में कौन है और कैसे स्थित है? तथा अन्तकाल में संयमी योगीजन आपको कैसे जान लेते हैं?'

---

१. अर्जुनउवाचः किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम।
अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते।।१।।
अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन।
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः।।२।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अर्जुन के प्रश्न करने पर भगवान् ने कृपा करके युक्तिपूर्वक विस्तार से उसको जो रहस्य समझाया था, उसी रहस्य को यानी, भगवान् के उसी अमृतमय उपदेश को वेदव्यास जी पुनः पाठकों के लाभार्थ भगवान् के श्री मुख से कहला रहे हैं।

भगवान् कहते हैं कि देखो अर्जुन, अविनाशी परमात्म-तत्व को ब्रह्म कहते हैं। और, उस परमात्म-तत्व के स्वभाव, यानी प्रकृति को अध्यात्म कहते हैं। तथा, स्वभाव यानी प्रकृति से त्यागे हुए भूतों (जीवों) के भाव को उत्पन्न करने वाले यानी सृष्टि-सृजन के अनन्त संकल्पों को कर्म कहते हैं।[1]

चूँकि यह रहस्य अत्यन्त गूढ़ है, अतः मैं अब तुझे प्रत्येक तथ्य को अच्छी तरह से समझाता हूँ, तू ध्यानपूर्वक समझले। सर्व प्रथम मैं तुझे 'ब्रह्म' का ज्ञान कराता हूँ।

ब्रह्म

देखो अर्जुन, अखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त परमात्म-सत्ता ही ब्रह्म है, जिसकी सकाशता से समस्त सृष्टि गतिशील हो रही है। वस्तुतः, अखिल ब्रह्म को समष्टि रूप में पूर्ण आत्मा कहते हैं। चूँकि यह नित्य है तथा सर्वश्रेष्ठ है, अतः इसे परम अक्षर सच्चिदानन्दघन परमात्मा के नाम से सम्बोधन किया जाता है। इसी पूर्ण ब्रह्म परमात्मा का एक एक अंश एक एक प्राणी में भी व्याप्त है। चूँकि समष्टि रूप से अखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त परमात्मा और प्राणियों में व्याप्त उसके एक-एक अविभाजित अंश में कोई अन्तर नहीं है, अतः एक प्राणी की देह में व्याप्त प्राणी की आत्मा को ही वास्तव में परम अक्षर (अविनाशी) ब्रह्म कहा जाता है। अब तू अध्यात्म के रहस्य को भी समझले।

अध्यात्म

यदि तू किसी व्यक्ति विशेष के सम्पर्क में आवे तो तुझे अनुभव होगा कि व्यक्ति की देह में व्याप्त आत्मा की अपेक्षा उसकी प्रकृति द्वारा ही तुझको उस व्यक्ति का कुछ परिचय मिलेगा। यद्यपि यह सत्य है कि आत्मा की सत्ता बिना प्रकृति का

---

१. श्रीभगवानुवाच : अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कर्मसंज्ञितः।।३।।

अस्तित्व है ही नहीं। आत्मा तो साक्षीमात्र है।

वस्तुतः, व्यक्ति के विशेष परिचय की दृष्टि से उसकी प्रकृति अथवा उसका स्वभाव ही महत्व-पूर्ण है। प्रकृति की विशेषता के कारण ही व्यक्तियों में भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। जैसे साधारण या असाधारण; सज्जन या दुर्जन, वीर अथवा कायर, बुद्धिमान् अथवा मूर्ख, सत्य-वादी या मिथ्या-भाषी, सहृदय अथवा क्रूर आदि।

अस्तु, प्राणी की देह में जो उसकी प्रकृति अथवा उसका स्वभाव है, (जो प्राणी की आत्म-सत्ता से प्रेरित है) वही अध्यात्म कहलाता है।

अधि का अर्थ है विशेष और चूँकि आत्मा के आधार से स्थित देही का विशेष परिचय प्रकृति के द्वारा ही मिलता है, अतः प्रकृति को ही आत्मा का विशेष रूप से परिचय कराने वाली सत्ता अधि+आत्म अर्थात् 'अध्यात्म' कहते हैं।

जिस प्रकार समष्टि रूप से अखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त आत्म-तत्व का एक अविभाजित अंश प्राणी में होता है उसी प्रकार अखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त त्रिगुणात्मक प्रकृति का भी एक अंश एक प्राणी में होता है। केवल अन्तर इतना ही है कि आत्मा तो सदा एक सी ही निर्विकारी और निर्लिप्त रहती है, किन्तु प्रकृति के गुण परिवर्तनशील हैं। क्योंकि प्रायः देखा जाता है कि एक सज्जन परिस्थिति-वश दुर्जन भी हो सकता है और इसी प्रकार एक दुर्जन भी सज्जन बन सकता है। अस्तु, अब तू कर्म के तथ्य को भी अच्छी तरह समझले।

कर्म

जैसे कि सूर्यनारायण के उदय होते ही समस्त प्राणी अपने-अपने कार्य करने में प्रवृत्त होने लगते हैं यद्यपि सूर्य उन्हें कोई आदेश नहीं देता है, वैसे ही आत्म-तत्व की सत्ता का यह प्रभाव है कि उसके बिना आदेश दिए हुए ही त्रिगुणात्मक प्रकृति में स्पन्दन होने लगता है। त्रिगुणात्मक प्रकृति के स्पन्दन को 'संकल्प' कहते हैं। ये संकल्प ही सृष्टि की रचना को मूर्त्त रूप देने के कारण हैं, क्योंकि

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रायः यह सब को ही अनुभव है कि यदि कोई व्यक्ति कहीं जाना चाहता है तो वहाँ जाने का उसके मन में संकल्प पहिले उदय होता है तब उसका शरीर अभीष्ट स्थान पर जाया करता है। अस्तु, आत्मा की सत्ता से त्रिगुणात्मक प्रकृति से उत्पन्न अनन्त संकल्प ही विभिन्न शरीरों के रूप में परिणत हो जाते हैं, यह असंगत नहीं। इस प्रकार रचे हुए शरीरों को भूत या जीव कहते हैं, अर्थात् उनमें अब भूत या जीव-भाव दृष्टिगोचर होने लगता है।

इससे पूर्व, आत्मा और प्रकृति के होते हुए भी बिना शरीर के भूत-भावका अस्तित्व दिखलाई नहीं पड़ता था। अस्तु, त्रिगुणात्मक प्रकृति से व्यक्त यानी त्यागे हुए या निकले हुए अनन्त संकल्प ही भूत (जीव) के भाव को उत्पन्न करने वाले हैं और ये संकल्प ही जीवों के आकार यानी देह धारण कर लेते हैं।

चूँकि सृष्टि-सृजन एक कर्म ही है, अतः त्रिगुणात्मक प्रकृति से पृथक् हुए भूत के भाव को उत्पन्न करने वाले अनन्त संकल्पों को 'कर्म' कहते हैं। हे अर्जुन, अब तू यह भी समझ ले कि अधिभूत, अधिदैव और अधियज्ञ का वास्तविक भाव क्या है।

अधिभूत

यह तथ्य तो तुझे स्पष्ट है ही कि प्राणी का स्थूल देह कुछ संकल्पों की पूर्ति करने के हेतु प्रकट होता है। यह स्थूल देह (दसों इन्द्रियों सहित स्थूल पिण्ड) जिस निमित्त से प्रकट होती है उस निमित्त के पूर्ण होने में जो अवधि लगती है उसको उस स्थूल देह की आयु कहते हैं। आयु पूर्ण होते ही शरीर बेकार हो जाता है। अन्त में वह बेकार शरीर पंच तत्वों में ही पूर्ववत् मिल जाता है। अतः देह के नाम व रूप के मिट जाने को क्षर भाव कहते हैं। अतः प्राणी का दसों इन्द्रियों सहित स्थूल पिण्ड जिसका कि नाम व रूप कालावधि में बेकार होकर मिट जाया करता है, अधिभूत कहलाता है। चूँकि प्राणी के संकल्प को जीव कहलाने की विशेषता स्थूल देह से ही प्राप्त हुई है, अतः भूत (जीव) के साथ,

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

'अधि' (विशेषता) लगाकर स्थूल देह को ही अधिभूत कहा जाता है।

अधिदैव

देखो अर्जुन, तू इस तथ्य से तो परिचित हो ही चुका है कि आत्म-तत्व की सत्ता से त्रिगुणात्मक प्रकृति में स्पन्दन होता है। इन स्पन्दनों को ही तू अनन्त संकल्प कह सकता है। ये संकल्प अनुकूल परिस्थिति प्राप्त होने पर मूर्त्त रूप धारण कर लेते हैं। जिन संकल्पों की पूर्ति के निमित्त एक प्राणी की देह का निर्माण होता है वे संकल्प ही उस प्राणी की देह में उसके अन्त होने तक विशेष रूप से स्थायी अस्तित्व रखते हैं। यद्यपि प्रतिक्षण मानवमात्र के मस्तिष्क के कोषों में विद्यमान अनन्त संकल्प भी स्मृति-चिह्नों के रूप में नित्य एक एक प्राणी के मस्तिष्क के स्मृति चिह्नों को संवेदन करते रहते हैं। अस्तु, प्राणी के मस्तिष्क में विशेष रूप से रहने वाले स्थायी संकल्पों को ही प्राणी का दैव अथवा भाग्य भी कह सकते हैं। अतः इन्हीं स्थायी विविध संकल्पों को जिन के लिए प्राणी के शरीर का निर्माण हुआ है 'अधिदैव' कहा जाता है।

अधियज्ञ

अखिल ब्रह्माण्ड के प्राणि-मात्र में व्याप्त त्रिगुणात्मक प्रकृति के अनन्त संवेदनों में से सृष्टि का पालन करने वाले संवेदनों की सामूहिक शक्ति वैष्णवी शक्ति कहलाती है। सामूहिक वैष्णवी शक्ति के वे संवेदन जो कि एक प्राणी को प्रभावित करते हैं, अर्थात् जिन के मध्य वह प्राणी अधिकांश में अपना समय व्यतीत करता है उन्हें 'अधियज्ञ' कहते हैं। क्योंकि 'यज्ञ' विष्णु को कहते हैं और ये संवेदन वैष्णवी शक्ति के ही हैं जो विशेष रूप से प्राणी के अधिदैव संकल्पों को (भाग्य के संकल्पों को) जिनकी पूर्ति के निमित्त उसने जन्म लिया है उन्हें उभारते हैं और कर्म करने के लिए सचेष्ट करते हैं। अस्तु, प्राणी के जन्म के कारणभूत संकल्पों को प्रेरित कर सचेष्ट करने वाले वैष्णवी शक्ति के सीमित संवदेनों को अधियज्ञ कहना यथार्थ है।

सारांश यह है कि प्राणी की आत्मा, 'परम अक्षर ब्रह्म' कहलाती है और उसकी प्रकृति को 'अध्यात्म' कहते हैं। भूत-भाव को उत्पन्न करने वाले प्रकृति से व्यक्त संकल्प जो शरीर को मूर्त्त रूप देते हैं उन अनन्त संकल्पों को 'कर्म' कहते हैं। और हे देह धारियों में श्रेष्ठ अर्जुन, प्राणी

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

का स्थूल शरीर जो क्षर भाव यानी नाशवान भाव वाला है 'अधिभूत' कहा जाता है। जिन संकल्पों की पूर्ति के लिए पुरुष (जीव) का जन्म होता है और जो स्थायी रूप से प्राणी के अन्दर विद्यमान रहते हैं उन्हें 'अधिदैव' कहा जाता है। इन 'अधिदैव' कहलाने वाले संवेदनों को प्रेरित कर सचेष्ट करने वाले संवदेनों की इस शरीर में मेरी वैष्णवी शक्ति की संज्ञा दी जाती है, यानी इस शरीर में मैं ही 'अधियज्ञ' हूँ।[1] अब तुझे हे अर्जुन, यह भी जानने की इच्छा होगी कि विष्णु पद कैसे प्राप्त किया जाता है। अस्तु, तू उस युक्ति को भी समझ ले।

विष्णु पद प्राप्ति की युक्तिं

देखो अर्जुन, प्रायः जन साधारण का यह अनुभूत मत है कि शयन करने से पूर्व, जिस आवश्यक कार्य को करने का चिन्तन करता हुआ मानव सोता है, प्रातः निद्रा भंग होते ही उसी कार्य को करने का उसे पुनः स्मरण हो आता है। चूँकि मृत्यु की घड़ी से जन्म लेने तक की अवधि दीर्घकालीन निद्रा ही है, अतः मृत्यु के समय यदि विष्णु भगवान् का स्मरण किया जावेगा तो मृत्यु और जन्म के बीच की दीर्घकालीन निद्रा के भंग होते ही विष्णु भगवान् का स्मरण आना आवश्यक ही है। अस्तु, जो कोई व्यक्ति अन्तकाल में मेरी वैष्णवी शक्ति के समान कर्त्तव्यों के पालन करने का शुद्ध अन्तःकरण से विचार करता हुआ शरीर छोड़ेगा तो इस में किंचित् भी शंका करने की आवश्यकता नहीं कि वह व्यक्ति अवश्यमेव मेरे, अर्थात् वैष्णवी शक्ति के भाव को ही प्राप्त होगा, अर्थात् उस व्यक्ति को जन्म से ही लोकहित-कार्य करना सहज एवं स्वाभाविक होगा। निस्सन्देह यही विष्णुपद प्राप्ति की युक्ति है।

अस्तु, विष्णु सदृश कर्म करने का अभ्यास नित्य ही प्रतिक्षण होते रहना चाहिए। तब ही निश्चयात्मक रूप से कहा जा सकता है कि अन्तकाल में, अर्थात् मृत्यु के समय 'लक्ष्य' स्मरण रह सकेगा। क्योंकि, किसकी मृत्यु कब होगी यह अनिश्चयात्मक है। अतएव लक्ष्य के प्रति सतत जागरूक रहना साधक का परम धर्म है। क्योंकि, यदि कोई साधक एक निश्चित समय तक तो विष्णु पद प्राप्ति की साधना करे और शेष समय अन्य वासनाओं में आसक्त रहे तो यही समझना चाहिए कि अभी

---

१. अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम्।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर।।४।।

उसे विष्णु-पद प्राप्ति की सर्वोपरि अभिलाषा उत्पन्न नहीं हुई है। अतः मृत्यु के समय उसके सामने अन्य वासनाओं का भी ध्यान आ सकता है क्योंकि, उन्हीं का चिन्तन वह अधिक करता है। ऐसी दशा में, वह विष्णु-पद का अधिकारी नहीं हो सकता। वस्तुतः बुद्धि द्वारा जब लोक-हित ही सर्वोपरि दिखने लगता है तब ही लोकहित की भावना प्रतिक्षण बनी रह सकती है दूसरे शब्दों में लोक-हित के कार्य उस व्यक्ति के निज के कार्यों में ही परिणत हो जाते हैं। अतः साधक जो विष्णु सदृश अवतारी महापुरुष होना चाहता है उसका मन, विष्णु सदृश कार्यों में ही लगेगा और उसकी बुद्धि लोक-हित कार्यों के करने का ही निर्णय देगी। अस्तु, वह साधक प्रत्येक स्थिति में लोक-हित कर्म करने में ही अनुरक्त रहेगा। परिणामस्वरूप, उस साधक को अवश्य ही विष्णु-पद प्राप्त होगा।

संक्षेप में, तू यूँ समझ कि जो मृत्यु के समय में भी भगवान् को यानी मुझको ही स्मरण करता हुआ देह त्यागकर जाता है वह भगवान् के भाव को प्राप्त होता है, इसमें किंचित भी सन्देह नहीं है।[1]

अस्तु, हे कुन्तीपुत्र अर्जुन, जिस-जिस भाव का चिन्तन करता मानव मृत्यु के समय देह त्याग करता है, उस-उस भाव के वशीभूत होने से उस-उस भाव को ही वह सदैव ही प्राप्त होता है।[2]

*अतः हे अर्जुन, मैं तुझे आदेश देता हूँ कि तू प्रतिक्षण मेरे भाव

---

१. अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः।।५।।

२. यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवेति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः।।६।।

*जब अर्जुन को भगवान् का यह उपदेश कि अंतकाल के समय में जो साधक भगवान् श्रीकृष्ण के सदृश लोक-हित कार्यों में तल्लीन रहता है, वह भगवान् श्रीकृष्ण के भावों को लिये ही जन्म लेता है ऐसा स्मरण हुआ तो उसकी मुखाकृति पर प्रसन्नता की रेखा आ गई होगी। उसकी मुखाकृति को देखकर भगवान् ने अनुमान लगा लिया होगा कि मेरे द्वारा पूर्व में दिए हुऐ उपदेशों के अनुसार आचरण करने की भावना अर्जुन के हृदय में उत्पन्न होने लगी है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अतः उस स्थिति से लाभ उठाकर जैसे लोहा गरम होने पर उस पर का स्मरण करते हुए युद्ध कर। तू यह न समझ लेना कि मेरे भाव का स्मरण करना और युद्ध करना दो पृथक्-पृथक क्रियाऐं हैं अतः एक साथ वे नहीं हो सकतीं। किन्तु, ऐसा नहीं है। स्मरण करते हुए तू युद्ध भी वैसे ही कर सकता है जैसे तू कोई अपना दैनिक काम करता हो। वस्तुतः कोई भी मनुष्य को अपना काम करते समय यह स्मरण करने की आवश्यकता नहीं रहती कि वह अपना काम कर रहा है क्योंकि, उसे यह पूर्ण निश्चय है कि वह अपना ही काम कर रहा है। इसी प्रकार यदि यह युद्ध भगवान् के निमित्त हो रहा है, ऐसा तेरा पूर्ण निश्चय हो तो फिर यह युद्ध भगवान के निमित्त तेरे द्वारा होता ही रहेगा और यह स्मरण रखने की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी कि तू भगवान् के लिए युद्ध कर रहा है। भगवान् के निमित्त युद्ध करने का पूर्ण निश्चय होते ही तू तो अपने मन में भगवान् के लिए ही युद्ध करेगा जबकि देखने वाले लोगों को तू युद्ध करते दिखेगा। अतः, वे तो यही कहेंगे कि अर्जुन युद्ध कर रहा है। अतएव तू प्रतिक्षण मुझको स्मरण कर और युद्ध कर। यदि तू अपने मन को और अपनी बुद्धि को मुझमें अर्पण कर देगा यानी तेरी समझ में मन और बुद्धि अब तेरी न होकर मेरी ही है तो तू निःसन्देह मुझको ही

चोट् लगाने से लोहे का इच्छित आकार बनाया जाता है वैसे ही अब भगवान् प्रत्यक्ष रूप से अर्जुन को युद्ध भूमि में ही अपनी ओर आकर्षित करते हुए यह कहने लगते हैं कि देखो अर्जुन, जैसे तुम अभी तक अन्य कामों को भगवान् को निमित्त बनाकर करते थे उसी प्रकार इस युद्ध के कार्य को भी उनके निमित्त ही करो। क्योंकि जिस भाव को लेकर व्यक्ति का शरीर छूटता है वह उसी भाव को ही लेकर पुनः जन्म लेता है। चूँकि यह युद्ध भूमि है, युद्ध में योद्धा, मृत्यु के मुख में सदा रहता है, अर्थात यह युद्ध अन्तकाल के सदृश ही है। अतः तुम इस युद्ध को भगवान् का काम समझकर डटकर लड़ो। यदि तुम मन से यह सोचते हुए कि तुम भगवान् के लिए ही युद्ध कर रहे हो और बुद्धि से भी यही समझ रहे हो कि यह युद्ध-कार्य वस्तुतः, भगवान् का ही है तो इसमें किंचित् मात्र भी संदेह नहीं कि जिस क्षण भी तुम्हारी मृत्यु यदि कहीं हो भी गई तो

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तुम भगवान् के भाव को ही पुनर्जन्म में प्राप्त होंगे।
प्राप्त होगा।[1]

अस्तु, अब तू उस विधि को भी समझ ले जिससे साधक मेरे भाव को यानी परम दिव्य पुरुष के भाव को प्राप्त होता है।*

दिव्य परम पुरुष के भाव को प्रापत करने की विधि

यह तो अर्जुन तुझे स्पष्ट हो ही चुका है कि जो व्यक्ति जिस भाव में नित्य रहता है उसी भाव का अन्तकाल में भी उसको स्मरण रहना स्वाभाविक है। परिणामतः वह व्यक्ति उसी भाव को लिए हुए जन्म लेता है। अतः जो साधक यह चाहता है कि वह दूसरे जन्म में दिव्य परम पुरुष के भाव को प्राप्त होकर जन्म ले तो वह दिव्य परम पुरुष (ऐश्वर्यवान पुरुष) के भाव का ही स्वप्न देखा करता है। उसकी लौ दिव्य परम पुरुष के भावों में ही लगी रहती है। इधर-उधर उसका ध्यान नहीं भटकता अस्तु, नित्य दिव्य परम पुरुष के चिन्तन में रत हुआ व्यक्ति अपने अन्तकाल में भी दिव्य परम पुरुष को ही स्मरण कर सकता है। परिणामतः वह साधक, शरीर छूटने पर दिव्य परम पुरुष के भावों से युक्त हुआ जन्म ले सकता हैं साथ ही ऐश्वर्यवान सम्पन्न व्यक्ति

---

१. तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम्।।७।।

*भगवान्, अर्जुन को, इतना कहकर पुनः चुप हो जाते है। अर्जुन, भगवान् को कोई उत्तर नहीं देता है। पता नहीं उसने भगवान् के ये शब्द सुने या नहीं। किन्तु पूर्व अर्जित ज्ञान के स्मरण का वेग उसको इतना प्रबल हो गया है कि उसे ''अन्तकाल में कैसे व्यक्ति वैष्णवी शक्ति को प्राप्त हो जाता है'' स्मरण आते ही यह भी स्मरण होने लगता है कि भगवान् ने उसे इसके बाद यह समझाया था कि दिव्य पुरुष के उपासक तथा परम गति के इच्छुक एवं ज्ञानी अन्त समय में अपने-अपने अभीष्ट लक्ष्य का स्मरण करते हैं तो वे उन्हीं अभीष्ट लक्ष्यों को प्राप्त हो जाते हैं। अर्जुन के मनोगत भावों के अनुसार ही भगवान् के उपदेश को अब वेदव्यास जी भगवान् श्रीकृष्ण के मुख से ही पाठकों के लाभार्थ पुनः

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कहला रहे हैं।

का जीवन व्यतीत करने का सौभाग्य प्राप्त कर सकता है। अस्तु, हे पार्थ, दिव्य परम पुरुष के भाव को प्राप्त करने के लिये जो व्यक्ति अभ्यास करता है एवं उससे घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित करने की भावना से उसी ओर चित्त लगता है, यानी योग युक्त चित्त से उसके गुणों का चिन्तन करता है तथा दूसरी ओर जिसका चित्त नहीं जाता है, वह व्यक्ति दिव्य परम पुरुष को प्राप्त होता है।१

अब तू यह भी जान ले कि दिव्य परम पुरुष के भाव को प्राप्त करने का अभिलाषी साधक किस विधि से उसके गुणों का चिन्तन करता है।

दिव्य परम पुरुष के गुणों के चिन्तन की विधि

दिव्य परम पुरुष के भाव को प्राप्त करने का इच्छुक साधक दिव्य परम पुरुष के अनन्त गुणों का चिन्तन इस प्रकार करता है कि दिव्य परम पुरुष, वस्तुतः अन्तःकरण के सूक्ष्म से सूक्ष्म भाव के ज्ञाता, कवि हैं; वे सबसे पुराने आदरणीय महापुरुष हैं, वे प्राणियों पर नियंत्रण करते हैं। वे शुभ और अशुभ कर्म करने वाले व्यक्तियों को उनके कर्मानुसार फल देते हैं, उनकी गति सूक्ष्म से सूक्ष्म है; वे सबकी रक्षा करने वाले एवं सबका पालन पोषण करने वाले हैं। अगर कोई उनके स्वरूप को जानना चाहे तो नहीं जान सकता। अतः उनका स्वरूप अचिन्त्य है; उनकी कीर्ति का प्रकाश सूर्य की भाँति नित्य चैतन्य दृष्टिगोचर होता है और वे अज्ञान अन्धकार से सर्वथा परे हैं। इस प्रकार दिव्य परम पुरुष के भाव को प्राप्त करने का इच्छुक साधक दिव्य परम पुरुष का नित्य निश्चित अवधि तक मनन एवं चिन्तन करता है। साथ ही चिन्तन करते समय वह प्राणों को भृकुटि (भौंहों) के मध्य में रखने का प्रयत्न करता है। (भृकुटि के मध्य स्थान को) आज्ञाचक्र कहते हैं। यह शरीर का वह भाग है जहाँ प्राणशक्ति (कुंडलिनी) की सहायता से विचारों को केन्द्रित होने में सुगमता अनुभव होती है।) इस प्रकार अभ्यस्त हो जाने से मृत्यु के समय भी जब सब इन्द्रियाँ शिथिल होने लगती हैं तब भी वह अभ्यस्त साधक, दिव्य परम पुरुष की भावना से युक्त, अपने प्राणों को अपनी भृकुटि

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के मध्य में एकाग्र करके मन को इधर उधर जाने से रोकता हुआ दिव्य परम पुरुष के भाव में ही स्थित हो जाता है। परिणामस्वरूप वह श्रेष्ठ दिव्य पुरुष के भाव को लेकर ही जन्म लेता है।[1]

अब मैं तुझे यह विधि संक्षेप में समझाए देता हूँ जिससे योगी परम गति प्राप्ति करते हैं।

योगी की परम गति प्राप्त करने की विधि

देखो अर्जुन, परम गति प्राप्त करने से तात्पर्य उस पद को प्राप्त करना है जिसको वेदों के जानने वाले विद्वान्, अक्षर (अविनाशी ओंकार) कहते हैं तथा आसक्ति रहित यत्नशील मुनिगण अथवा यतिगण जिस अविनाशी पद में अपनी बुद्धि द्वारा प्रवेश किया करते हैं एवं जिस अविनाशी अक्षर पद की प्राप्ति के हेतु ब्रह्मचर्य का पालन किया जाता है। उस पद को मैं संक्षेप में तुझे कहूँगा।२ तत्ववेत्ताओं की दृष्टि से जो साधक अपने अंतकाल के आने पर अपनी समस्त इन्द्रियों की गति को रोककर और मन को हृदय में स्थिर कर अर्थात् किसी भी प्रकार का संकल्प न करते हुए अपने योगाभ्यास द्वारा प्राणों को खींचकर मस्तक में स्थिर करके केवल ॐ एकाक्षर का उच्चारण करते हुए एवं परमात्म-तत्व का स्मरण करते-करते यानी मेरा स्मरण करते-करते शरीर छोड़ता है वह परमगति को प्राप्त हो जाता है, अर्थात् परमात्म-तत्व में ही लीन हो जाता है, अथवा यूँ समझ कि वह मेरे को ही प्राप्त हो जाता है।३

---

१. कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।।९।।
प्रयाणकाले मनसाचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव।
भ्रु वोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्।।१०।।

२. यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये।।११।।

३. सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम्।।१२।।
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्।।१३।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अब तू यह भी जान ले कि ज्ञानी भक्त, परमात्म-तत्व को कैसे प्राप्त करता है।

ज्ञानी द्वारा परमात्म-तत्व की प्राप्ति

वस्तुतः ज्ञानी भक्त का चित्त केवल परमात्म-तत्व में ही लीन रहता है जबकि सूक्ष्म शरीर के आदेश से उसके स्थूल शरीर द्वारा लोक-हित के कार्य निरन्तर होते ही रहते हैं। इस प्रकार वह सदैव परमात्म-तत्व का ही स्मरण करता रहता है। अतः उसे कोई अन्य योगाभ्यास की आवश्यकता नहीं पड़ती। ऐसे नित्य निरन्तर परमात्म-तत्व का स्मरण करने वाले योगी को परमात्म-तत्व सरलता से प्राप्त हो जाता है। अस्तु, हे पार्थ, जो भक्त अनन्यचित्त है अर्थात् जिसका चित्त और किसी में न लगकर केवल मेरे में ही लगा रहता है और जो निरन्तर मेरा स्मरण करता है उस नित्य युक्त योगी भक्त को परमात्म-तत्व प्राप्त कर लेना अत्यन्त सुलभ है।[१]

सत्य ही, पुनर्जन्म से अभिप्राय फलेच्छा की पूर्त्यर्थ बार-बार जन्म लेने से है। चूँकि फलेच्छा से दुःख होता है, अतएव पुनर्जन्म दुखों के घर जैसा है। अस्तु, महात्मा लोग उस परमात्म-तत्व में लीन रहते हैं जिसमें फलेच्छा नहीं होती। अतः परमात्म-तत्व में लीन मेरे अनन्य भक्त, ज्ञानीजन शरीर छूटने पर दुःखों के घर एवं पुनरावृत्ति वाले पुनर्जन्म को प्राप्त नहीं होते।[२]

वस्तुतः जन्म होता है संकल्प से और चूँकि इन महात्माओं के निजी संकल्प कुछ होते ही नहीं, अतः उनका जन्म नहीं होता। हाँ, लोक-हित के लिए यदि उन्हें जन्म लेना भी पड़ता है तो अवतारी महापुरुष के सदृश अर्थात् आसक्ति रहित वे जन्म लेते हैं जिसमें दुःख का लेशमात्र भी उन्हें अनुभव नहीं होता। परन्तु, जो भक्त, दिव्य पुरुष (ऐश्वर्यवान पुरुष) की गति को प्राप्त होते हैं उनका तो जन्म लेना निश्चित है। किन्तु, जो परमतत्व को प्राप्त होते हैं उनका पुनर्जन्म नहीं होता, इसका क्या कारण है, यह भी अब मैं तुझसे कहूँगा।

---

१. अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः।।१४।।

२. मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः।।१५।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सत्य ही, इस सृष्टि की रचना संकल्प से है। अतः जहाँ तक संकल्पों की सीमा है वहाँ तक ही सृष्टि रचना का अस्तित्व है। अस्तु, वह व्यक्ति जो कोई संकल्प लिए हुए शरीर छोड़ता है उसे फिर जन्म लेना ही चाहिए। इन संकल्पों के आधार से ही प्राणी से लेकर ब्रह्मा तक का अस्तित्व है। अन्तर केवल इतना ही है कि प्राणी अल्प आयु का है तो ब्रह्मा दीर्घ आयु का। अस्तु, प्राणी के अल्प जीवन से लेकर ब्रह्मा के दीर्घ जीवन तक भोग भोगने वाले जीवों का पुनर्जन्म से छुटकारा नहीं हो सकता। दिव्य अर्थात् ऐश्वर्यवान पुरुष का भी ऐश्वर्य क्षणभंगुर है। उसको भी शरीर छूटने पर पुर्नजन्म लेना पड़ता है। वैसे तो जन्म और मृत्यु केवल प्राणी के आने-जाने सदृश है। किन्तु, यह आना-जाना भी व्यक्ति के एक काम करने के समान ही है। जैसे एक व्यक्ति का स्वभाव है कि वह एक ही काम करते-करते जब ऊब जाता है तो वह ऐसा परिवर्तन चाहता है जिससे उसे नवीन स्फूर्ति प्राप्त हो सके। इसी प्रकार जब जीव भोगों को भोगने बार-बार जन्म लेता है और बार-बार मरता है तब वह जन्म-मरण एवं भोगों से व्याकुल होकर उनसे छुटकारा चाहता है। यही वह अवसर है जब जीव को परमात्म-तत्व में अनुराग उत्पन्न होता है। ऐसे जीवों को महात्मा अथवा योगी कहते हैं। इस प्रकार के महात्मा संकल्प-रहित, निर्लिप्त, निर्विकारी शुद्ध चैतन्य सच्चिदानन्द परम पद के स्वरूप की स्थिति में रहने का अभ्यास करते हैं। अभ्यास दृढ़ होने पर जब उनका शरीर छूटता है तो वे परमपद का स्मरण करते-करते शरीर छोड़ते हैं। परिणामतः उन महात्माओं का पुनर्जन्म नहीं होता। अस्तु, हे अर्जुन, ब्रह्मभुवन से लेकर सभी लोक तो बार-बार जन्म-मृत्यु के देने वाले हैं, किन्तु, हे कुंतीपुत्र, मुझे प्राप्त कर लेने के उपरान्त फिर जीव जन्म नहीं लेता।[1]

दिव्य जीवन को प्राप्त हुए साधक के पुनर्जन्म की अनिवार्यता तथा परम पद को प्राप्त साधक की पुनर्जन्म से मुक्ति

वस्तुतः, पुनर्जन्म न लेने वालों की स्थिति अज और अविनाशी परमात्मा के सदृश हो जाती है। क्योंकि, अज और अविनाशी भाव में काल (समय) की सीमा नहीं है। जबकि अन्य समस्त भाव जो संकल्प के

---

१. आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते।।१६।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अधीन हैं उनकी निश्चित अवधि होती है। अतः इस परमपद की स्थिति को तो 'नित्य' कहते हैं और ब्रह्मा तक की स्थिति को 'अनित्य'। अस्तु, अब तू यह भी जान ले कि ब्रह्मा का जीवन किस प्रकार अनित्य है?

ब्रह्मा के जीवन की अनित्यता

देखो अर्जुन, तत्ववेत्ता योगी महात्मा अच्छी तरह से जानते हैं कि ब्रह्मा के जीवन की निश्चित अवधि होती है, अतएव उसका जीवन अनित्य है। हाँ, प्राणी के जीवन में और ब्रह्मा के जीवन में केवल इतना अन्तर है कि प्राणी का दिन यदि १२ घन्टे का है तो ब्रह्मा का दिन सहस्र युग का है। क्योंकि, उनके अनुमान से कलियुग ४३२००० वर्ष का है और द्वापर, कलियुग का दूना यानी ८६४००० वर्ष का है और त्रेता, कलियुग का तिगुना यानी १२९६००० वर्ष का और सत्ययुग, कलियुग का चौगुना यानी १७२८००० वर्ष का है। इस प्रकार चारों युगों की अवधि का योग हुआ तेतालीस लाख बीस हजार वर्ष (४३२००००×१०००=४३२००००००० वर्ष)। अस्तु, ब्रह्मा का दिन हुआ चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष का। इसी प्रकार ब्रह्मा की रात्रि हुई चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष की। अस्तु, जैसे प्राणी एक एक दिन-रात्रि की अपनी जीवन लीला करके पूर्ण आयु को प्राप्त होकर अपने नश्वर शरीर को छोड़ देता है, वैसे ही ब्रह्मा भी एक एक दिन-रात्रि की अपनी जीवन लीला को समाप्त कर अपने नश्वर शरीर को त्याग देता है। सत्य ही, जैसे प्राणी के जीवन के १०० वर्ष अनित्य हैं, ऐसे ही ब्रह्मा के १०० वर्ष भी अनित्य हैं। वस्तुतः, जो लोग यह जानते हैं कि ब्रह्मा के दिन की अवधि एक हजार युग की है और उसकी रात्रि भी एक हजार युग की है वे ही दिन-रात्रि को जानने वाले हैं।[1] साथ ही यह तथ्य भी स्पष्ट है कि जैसे एक प्राणी के मस्तिष्क में प्रातः काल उठते ही संकल्प (विचार) उठने लगते हैं और रात्रि में सोते ही उसी के मस्तिष्क में लीन हो जाते हैं वैसे ही ब्रह्मा की संकल्पमय सृष्टि ब्रह्मा के प्रातः काल उठते ही उदय हो जाती है और उसके सोते ही उसी में लीन हो जाती है। चूँकि, प्राणी के संकल्पों को कोई आँख से नहीं देख सकता, वैसे ही ब्रह्मा यानी

---

१. सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः।।१७।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अनन्त संकल्पों के समूह को भी न तो आँख से देखा जा सकता है और न मुख से व्यक्त किया जा सकता है। अतः, ब्रह्मा अव्यक्त कहलाता है, और एक-एक संकल्प जब एक-एक भूत के रूप में मूर्त रूप धारण करता है तब आँख से देखा जा सकता है तथा मुख से व्यक्त भी किया जा सकता है। अतः भूत समुदाय 'व्यक्त' कहलाता है। इसी भाव को अव्यक्त से व्यक्त की उत्पत्ति कहते हैं। अस्तु, जब भी ब्रह्मा का दिन आरम्भ होता है तभी उसके मस्तिष्क के अनन्त सूक्ष्म संकल्पों के कोषों में विद्यमान तरंगें अनन्त प्राणियों के रूप में उदय हो जाती हैं और जब उसकी रात्रि का आरम्भ होता है तो उसकी अनन्त सूक्ष्म संकल्प की तरंगे जो अनन्त प्राणियों के रूप में हैं वे भी उसी में लीन हो जाती हैं। स्पष्ट है कि दिन के आरम्भ होते ही अव्यक्त से सब व्यक्तियों का समुदाय उत्पन्न होता है और रात्रि के आरम्भ होते ही उसी अव्यक्त तत्व में लीन हो जाता है।[1] जैसे एक प्राणी के संकल्प दिन में उदय हो जाते हैं और रात्रि में उसी में लीन हो जाते हैं, ऐसे ही एक-एक दिन के क्रम से प्राणी की पूर्ण आयु समाप्त होते ही उसके शरीर से सम्बन्ध रखने वाली संकल्पों की तरंगों का भी उस प्राणी के शरीर से सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है। वैसे ही एक-एक दिन करके ब्रह्मा की पूर्ण आयु के समाप्त होते ही समस्त संकल्प रूप भूत-समुदाय भी ब्रह्मा के दिन में उत्पन्न होकर तथा ब्रह्मा की रात्रि में उसी में लीन होकर अन्ततोगत्वा ब्रह्मा की आयु पूर्ण होने पर ब्रह्मा से भी उस भूत-समुदाय का सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है। अस्तु, हे पार्थ, यह भूत-समुदाय उत्पन्न हो होकर रात्रि के आते ही लय हो जाता है और दिन के आरम्भ होते ही उत्पन्न हो जाता है।[2]

अब विवेचन से तुझे स्पष्ट हो गया होगा कि ब्रह्मा भी अपनी आयु के सौ वर्ष समाप्त कर अपनी समस्त सृष्टि सहित शान्त हो जाता है। अतः प्राणी से लेकर ब्रह्मा तक का जीवन परिवर्तनशील है। ऐसी स्थिति में अब वह पद जिसकी स्थिति नित्य कही जाती है अर्थात् जिसका अस्तित्व सदा रहता है उस परमात्म-पद की नित्यता को तू भली प्रकार से समझ ले।

---

१. अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके।।१८।।

२. भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते।
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे।।१९।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

देखो अर्जुन, तत्ववेत्ता लोग त्रिगुणात्मक प्रकृति को 'अव्यक्त' कहते हैं। इस प्रकृति को जो अव्यक्त सत्ता स्फुरित करती है वह सत्ता सबसे विलक्षण, अक्षर अर्थात् अविनाशी कहलाती है। अव्यक्त होने के कारण यह सत्ता न तो आँख से देखी जा सकती है और न मुख से उसके रूप का कथन हो सकता। केवल यह अनुभवगम्य है।

परमात्म-पद की नित्यता

इस शुद्ध, चैतन्य, सनातन, नित्य, निर्विकारी, निर्लिप्त, सदा विद्यमान अव्यक्त सत्ता को ही परमात्म-पद कहते हैं। इसी अव्यक्त परमात्म-तत्व का एक अंश प्रत्येक प्राणी में व्याप्त रहता है। इस आत्म-तत्व की सत्ता से प्राणियों में चैतन्य का अनुभव होता है। इसी सत्ता से उनके संकल्प स्फुरण होते हैं। यह सत्ता समस्त प्राणियों में व्याप्त होते हुए भी पृथक्-पृथक् नहीं वरन् एक ही सत्ता है तथा प्राणियों के शरीर छूटने पर भी यह स्थित रहती है जैसे अनेक जल भरे घड़ों में एक ही सूर्य पृथक-पृथक प्रतिबिम्बित होता अनुभव में आता है और उन घड़ों के टूट जाने पर फिर एक ही सूर्य स्थित दिखाई देता है अथवा जैसे प्रत्येक व्यक्ति को पृथक्-पृथक रूप से श्वास प्रदान करने वाली वायु पृथक्-पृथक् नहीं होती बल्कि एक ही अविभाजित वायु होती है, वैसे ही एक ही परमात्मशक्ति की सत्ता प्रत्येक प्राणी में विद्यमान रहती है। यह सत्ता प्राणियों के स्थूल शरीर छूटने पर अथवा देह से सूक्ष्म शरीर के संकल्पों का सम्बन्ध विच्छेद हो जाने पर भी वैसी ही बनी रहती है। इसमें कोई परिवर्तन नहीं आता। अस्तु, त्रिगुणात्मक अव्यक्त प्रकृति से अपरिवर्तनशील जो सनातन भाव है वह, श्रेष्ठ है। यह भाव सब भूतों के शरीर नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होता।[1] सत्य ही, भूतमात्र के देह त्यागने पर आत्मा अथवा उसकी सत्ता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अस्तु, परमात्म-तत्व की सत्ता की नित्यता का भाव अचल है। भूत मात्र से ब्रह्मा तक के शरीर नष्ट होने पर भी यह आत्म-तत्व की सत्ता का भाव नष्ट नहीं होता। सदा एक सा विद्यमान रहता है। अतः इस अविनाशी भाव को 'अव्यक्त अक्षर' कहा गया है और इसी अव्यक्त अक्षर को परम गति कहते हैं। इस स्थिति को प्राप्त हो जाने पर प्राणी का आवागमन नहीं होता, अर्थात् जो

---

१. परस्तस्मात्तु, भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति।।२०।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सिद्ध योगी महात्मा परमात्म-तत्व में स्थित रहता है उसे यह स्पष्ट भान होता है कि वह जन्म-मरण से मुक्त है। उसकी उपस्थिति में त्रिगुणात्मक प्रकृति में विभिन्न परिवर्तन होते रहते हैं; और प्रकृति, स्थूल शरीर को, बेकार होने पर त्याग देती है और नवीन देह धारण कर लेती है। प्रकृति की क्रियाओं से उसका कोई सम्बन्ध नहीं। अस्तु, परमात्म-तत्व वह श्रेष्ठ स्थान है जिसमें पहुँच कर आवागमन नहीं होता। चूँकि मैं स्वयं भी इसी स्थिति में सदा रहने का अभ्यासी हूँ, अतः परमात्म-तत्व की स्थिति में निवास ही वास्तव में मेरा परमधाम है। अस्तु, संक्षेप में तू यूँ समझ कि इस परमात्म-तत्व को ही अव्यक्त अक्षर यानी व्यक्त न किया जाने वाला अविनाशी तत्व कहा जाता है और इसी तत्व को परमगति कहते हैं। इस स्थिति को प्राप्त होकर फिर लौटना नहीं होता, अर्थात् जन्म नहीं होता यानी, अविनाशी हो जाता है। यह स्थिति ही मेरा परमधाम है।[१] चूँकि परमात्मतत्व की सत्ता प्रत्येक प्राणी में ओत प्रोत है, अतः यह कहा जाता है कि जिसके अन्तर्गत जगत के समस्त प्राणीमात्र हैं और जिसकी सत्ता समस्त जगत में व्याप्त है वह परम पुरुष परमात्मा ही प्राप्त करने योग्य है; और जिसकी प्राप्ति का एक मात्र साधन है उसकी अनन्य भक्ति, अर्थात् बुद्धि द्वारा अविनाशी परमात्म-तत्व के भाव में निरन्तर स्थित रहकर स्वधर्म पालन करना। सत्य ही, हे पार्थ, वह परम पुरुष अनन्य भक्ति से ही प्राप्त करने योग्य है। इसी के अन्तर्गत सब प्राणी स्थित हैं और यही समस्त जगत में व्याप्त है।[२]

देखो अर्जुन, अब मैं तुझे उस प्राचीन कसौटी से भी परिचित किये देता हूँ जिसके द्वारा योगियों के देह त्यागने पर उनके सम्बन्ध में यह अनुमान लगाया जाता था कि कौन से योगी को पुनर्जन्म प्राप्त होगा और कौनसा योगी पुनर्जन्म से मुक्त हो गया है।

---

१. अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम्।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।।२१।।

२. पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया।
यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम्।।२२।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हे पार्थ, तूने सम्भवतः लोगों को कहते सुना ही होगा कि जिस व्यक्ति की जो इच्छा सर्वोपरि होती है उसी इच्छा के भाव उसको मृत्यु के समय भी आते हैं। लोग इस प्रकार के उदाहरण भी दे दिया करते हैं जैसे कि एक व्यक्ति का चित्त गड़े हुए उसके धन में ही लगा रहता है तो मृत्यु के समय उसके प्राण उसके धन में ही अटके रहते हैं। जब कोई उसके संकेत पर निर्दिष्ट स्थान से उसका गड़ा हुआ धन उखाड़ कर उसके वक्षस्थल पर रख देता है तो तुरन्त ही उसके प्राण पखेरू उड़ जाते हैं। कहने का भाव यही है कि मृत्यु के समय व्यक्ति अपनी अभीष्ट भावना में ही व्यस्त रहता है। अतः मृत्यु के उपरान्त वह अपनी भावना की पूर्ति के लिए अपनी भावनानुसार पुनर्जन्म लेता है। इसी प्रकार से योगीजन भी देह त्यागते समय जिस भावना में होते हैं (प्रायः भावना वही होती है जो उसकी दृष्टि में सर्वोपरि होती है) उसी भावना को लिए हुए ही उनका जन्म होना चाहिए। अस्तु, हे अर्जुन, अब मैं तुझे उस काल को कहता हूँ जिस काल में शरीर छोड़कर योगीलोग जन्म लेते हैं अथवा नहीं लेते।[1]

> योगी के देह त्यागने पर उसका पुनर्जन्म होगा या नहीं जानने की प्राचीन प्रचलित कसौटी

प्रायः योगी जन दो भाँति के होते हैं। एक तो वे जो सिद्ध हो चुके हैं, अर्थात् जो वासना रहित हैं। दूसरे वे जो अभी सिद्ध नहीं हुए हैं, अर्थात् उनकी कुछ न कुछ वासना अभी शेष है। ये दोनों प्रकार के योगीजन जिस-जिस विचारधारा की लिए हुए देह त्यागते हैं अब तू उसी धारणा को सुन। देखो अर्जुन, सनातन काल से ही प्रकाश को ज्ञान का सूचक कहते हैं। यही कारण है कि जिस पदार्थ में प्रकाश की मात्रा जितनी अधिक होती है उतना ही उसमें जनसाधारण, पूज्य-भाव रखता है। इसी दृष्टि कोण को रखते हुए ही ज्योतिर्मय अग्नि की अथवा प्रकाश पुन्ज सूर्य की उपासना अनुमानतः आरम्भ हुई है। अतः सर्वोच्च कोटि के ज्ञानी को जो वासना रहित है देह त्यागते समय यदि भूमण्डल के प्रकाश की अधिक से अधिक

---

१. यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः।
प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ।।२३।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दैदीप्यमान ज्योतियों का संयोग प्राप्त होता है तो योगाभ्यास में रत साधकों का अनुमान है कि वह योगी ज्ञान की पराकाष्ठा को प्राप्त हो चुका है। तभी उसे मृत्यु के समय प्रकृति ने ऐसे सुअवसर प्रदान किये हैं। अतः वह योगी अब निश्चयात्मक रूप से परमात्म-तत्व में लीन हो गया है। अब उसे पुनर्जन्म की आवश्यकता नहीं (वैसे तो वास्तविक स्थिति से पूर्ण परिचय तो उस ज्ञानी को ही होता है जो देह त्यागता है)। अतः यह कहा जाता है कि परमात्म-तत्व के चिन्तन में लगे हुए ब्रह्मवेत्ता वे योगीजन देह त्यागने के उपरान्त परमात्म-तत्व में लीन हो जाते हैं जिनके कि देह त्याग के समय प्रातः काल का समय हो जब कि ज्योतिर्मय अग्नि का प्रकाश हो रहा हो अर्थात् यज्ञादि की पूर्णाहुति की बेला हो, शुक्ल पक्ष हो जिससे सूर्यास्त के उपरान्त भी चन्द्रमा का प्रकाश रहे; साथ ही उत्तरायण के छैः महीनों के मध्य का कोई दिन हो, अर्थात् जब सूर्यनारायण का प्रकाश अधिक रहता है यानी दिन बड़े हों। विवेचन से स्पष्ट है कि योगी के देह त्याग के समय यदि अधिकतम प्रकाश पुन्ज है तो योगाभ्यास में रत योगियों की धारणा के अनुसार उस देह त्यागने वाले योगी का पुनर्जन्म नहीं होगा किन्तु, यदि योगी की कोई भी वासना शेष है, अर्थात् पूर्णतः वासना रहित नहीं हो पाया है तो वह योगी ज्ञान के पूर्ण प्रकाश से वन्चित है। अतः ऐसे योगी को देह त्याग के समय प्रकृति के वे प्रकाश नहीं प्राप्त होते जो ज्ञानी परमात्म-तत्व में लीन योगी को प्राप्त होते हैं।- उस योगी को देह त्याग के समय प्रकृति के- अन्धकारमय वायुमण्डल का आधिक्य ही प्राप्त होता है। अतः योगी के देह त्यागते समय पृथ्वी पर अन्धकार ही अधिक हो तो प्राचीन तत्ववेत्ताओं की दृष्टि से वह योगी अभी पूर्णता को प्राप्त नहीं हुआ है। अतः उसे सिद्ध होने के लिये पुनः जन्म लेना होगा। इस कारण यह कहा जाता है कि वे योगी देह त्याग के उपरान्त परमात्म-तत्व में लीन नहीं हो पाते जिनके कि देह त्याग के समय संध्या काल हो, और धुँए से युक्त अग्नि हो, कृष्ण पक्ष हो जिसके कारण सूर्यास्त के उपरान्त शीघ्र ही अंधकार आ जावे, साथ ही दक्षिणायन के छैः महीनों के मध्य का कोई दिन हो, अर्थात् जब सूर्य का प्रकाश अधिक नहीं हो (दिन छोटे हों) इस विवेचन से तू स्पष्ट समझ गया होगा कि योगी के देह त्याग के समय यदि अंधकार का ही आधिक्य हो तो योगाभ्यासी साधकों की धारणा के अनुसार उस देह त्यागने वाले योगी को फिर

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जन्म लेना होगा। ऐसे योगी को चन्द्रमा की ज्योति प्राप्त हुई है, कहा जाता है। भाव यह है कि जैसे चन्द्रमा स्वयं अपने प्रकाश से प्रकाशित नहीं होता, उसमें स्वयं का प्रकाश नहीं है, इसी प्रकार वासनायुक्त योगी भी अपनी आत्मा के प्रकाश से अभी वन्चित है। अभी त्रिगुणात्मक माया में आसक्त है। अतः ऐसा योगी अभी ज्ञान की परिपक्व अवस्था को प्राप्त नहीं हुआ है। परिणामस्वरूप उसको पुनर्जन्म लेना ही चाहिए। संक्षेप में, तू यूँ समझ कि ब्रह्म को जानने वाले लोगों के शरीर छोड़ने का वह समय हो जब कि अग्नि, ज्योति, दिन, शुक्लपक्ष एवं उत्तरायण सूर्य के छै महीने हों तो वे ब्रह्म को प्राप्त होते हैं।[१] और यदि धुँआ, रात्रि, कृष्णपक्ष तथा दक्षिणायन के छैः महीने हों तो योगी चन्द्रमा की ज्योति को प्राप्त होगा और लौट कर पुनः जन्म लेगा।[२]

इस प्रकार से योगियों की देह त्याग के उपरान्त ये दो गतियाँ सनातन मानी जाती हैं (१) योगी के देह त्याग के समय प्रकाश का आधिक्य (शुक्ल गति, ज़ो पुनर्जन्म के न होने की द्योतक है) (२) अंधकार का आधिक्य (कृष्ण गति, जो पुनर्जन्म का होना प्रकट करती है)। ये दोनों कसौटियाँ अत्यन्त प्राचीनकाल से विख्यात हैं।[३]

अस्तु, इन दोनों गतियों के रहस्य को जानने वाला निष्काम कर्मयोगी कभी भी वासनाओं के वशीभूत नहीं होता, अर्थात् उनके मोह में नहीं फँसता। वह तो सदा ही प्रत्येक कर्म करते समय अपने चित्त को गुणातीत स्थिति में रखता है और इन्द्रियों से कर्म करता रहता है। अतः निष्काम कर्मयोगी यदि केवल दिन में दो चार घन्टे निष्काम कर्म करने का अभ्यास करे तो सिद्ध नहीं होगा वरन् उसको तो चौबीसों घन्टे योग में रत रहना

---

१. अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम्।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः।।२४।।

२. धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम्।
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते।।२५।।

३. शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः।।२६।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

चाहिए, अर्थात् प्रत्येक कर्म करते समय गुण गुणों में बर्त रहे हैं, की भावना रखनी चाहिए और स्वयं को कर्म का साक्षी अथवा द्रष्टा मात्र मानना चाहिए। इस प्रकार जो चौबीस घन्टे ही योगाभ्यास में रत रहता है उसकी मृत्यु के समय चाहे प्रकाश का आधिक्य हो या अन्धकार का, वह योगी अवश्य ही परमात्म-तत्व में लीन हो जावेगा। अस्तु, हे पार्थ, इन दोनों गतियों का जानने वाला कोई भी योगी मोह के वशीभूत नहीं होता। अतएव, हे अर्जुन, तू सब कालों में योगयुक्त हो।१ वस्तुतः जन्म तो वासना की पूर्ति के लिये होता है। जब निष्काम कर्मयोगी को कोई वासना ही नहीं है तो उसका जन्म हो ही कैसे सकता है? अस्तु, निष्काम कर्मयोगी के लिए प्राचीन रूढ़िवादियों के सदृश मृत्यु के समय न तो शुक्ल गति से अनुराग होता है और न कृष्ण गति से द्वेष। निष्काम कर्मयोगी तो निस्संदेह, देह त्याग से पूर्व ही जन्म अथवा मृत्यु से ऊपर उठ जाता है और नित्य प्रतिक्षण परमात्म-तत्व में लीन रहता है। परिणामस्वरूप निष्काम कर्मयोगी परमात्म-तत्व के रहस्य को जानकर उसे ही सर्वश्रेष्ठ समझता है। अतः जितने भी पुण्य फलों का उल्लेख वेदों में किया गया है अथवा यज्ञों के करने में, उग्र तपों के तपने में और दान देने में बताया गया है उन सबको निष्काम कर्म करने वाला योगी लांघ जाता है, अर्थात् उसकी निष्ठा केवल अविनाशी परमात्म-तत्व में ही रहती है, अन्यत्र कहीं नहीं होती। ऐसा एकनिष्ठ निष्काम कर्मयोगी सर्वप्रथम स्थान जो परमात्म-तत्व का है, उसे ही प्राप्त होता है, अर्थात् वह परमपद का अधिकारी हो जाता है।२

ॐ शम्

---

१. नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन।।२७।।

२. वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव
दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम्।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा
योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम्।।२८।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ॐ

नवाँ अध्याय

राजविद्या राजगुह्ययोग

अर्थात्

सर्वश्रेष्ठ एवं परम गोपनीय
वैष्णवी शक्ति के भाव को
अत्यन्त सुगमता से व्यवहार
में लाने का प्रकरण।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

राजविद्याराजगुह्ययोग

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम्।।२।।

यह गोपनीय ज्ञान समस्त अन्य ज्ञानों से श्रेष्ठ है, अतः यह गुह्यज्ञान, 'राज विद्या' कहलाता है, अर्थात् सब विद्याओं का राजा है। राजा कहने से तात्पर्य यह है कि जैसे राजा की अध्यक्षता में उसकी प्रजा कार्य करती है, वैसे ही इस परम गोपनीय ज्ञान के आने पर व्यक्ति को स्पष्ट रूप से उसकी आत्मा की अध्यक्षता में दसों इन्द्रिय एवं मन, बुद्धि, अहंकार से युक्त उसका पूर्ण शरीर स्वयं कार्य करता प्रतीत होने लगता है। साथ ही, परम गोपनीय होने से इस ज्ञान को 'राज गुह्यम्' कहते हैं। इतना ही नहीं वरन् यह ज्ञान संसार में लिप्त रहने के कारण जो अहंकार आदि से अशुद्धता आ जाती है उसको दूर कर, अर्थात् अहंकार मिटा कर व्यक्ति को अत्यन्त पवित्र बनाता है। अतः इस गोपनीय ज्ञान को अति पवित्र कहते हैं। चूँकि यह ज्ञान प्रत्यक्ष फल देने वाला है, धर्मयुक्त है, अर्थात् व्यावहारिक दृष्टि से आचरण भी किये जाने योग्य है, और साधन करने में भी अत्यन्त सुगम है साथ ही भगवान् के अविनाशी भाव को प्राप्त कराने वाला है, अतः इस परमगोपनीय ज्ञान को अतिपवित्र, उत्तम, प्रत्यक्षफलवाला, धर्मयुक्त, साधन करने में अत्यन्त सुगम, और भगवान् के अविनाशी भाव को प्राप्त कराने वाला कहते हैं।।२।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

६

आठवे अध्याय में भगवान् के परमपद प्राप्त करने का उपाय तथा प्राणी की देह में ब्रह्म, अध्यात्म, कर्म, अधिभूत, अधिदैव और अधियज्ञ कैसे स्थित हैं आदि के विषय में पाठक पढ़ चुके हैं। अब नवे अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण सर्व-व्यापी वैष्णवी शक्ति के भाव का विस्तारपूर्वक वर्णन एवं उसकी उपासना की और भी अत्यन्त सुगम रीति स्पष्ट रूप से समझाने की कृपा करेंगे। साथ ही, वे इस रहस्य का भी उद्घाटन करेंगे कि भगवान् को अर्पण करके सर्व कर्म करने से साधक किस प्रकार वैष्णवी शक्ति के भाव को प्राप्त होकर परम ब्रह्म परमात्मा के परमभाव को सुगमता से प्राप्त कर सकता है।

देखो अर्जुन, तू यह समझ ही गया है कि मेरे गोपनीय ज्ञान को प्राप्त करने का वह भक्त वास्तव में अधिकारी होता है जिसमें दोष-दृष्टि न हो। चूँकि तू सचमुच दोष-दृष्टि-रहित मेरा भक्त है, ऐसा मैं मानता हूँ, अतः मैं अपने परम गोपनीय ज्ञान को उसके रहस्य के सहित, अर्थात् व्यावहारिक दृष्टिकोण से तुझसे कहूँगा जिसको जानकार निस्सन्देह, जो कुछ भी तुझको इस संसार में अशुभ यानी दुःखदायी प्रतीत होता है उससे तू मुक्त हो जावेगा।[1]

यह गोपनीय ज्ञान समस्त अन्य ज्ञानों से श्रेष्ठ है, अतः यह गुह्यज्ञान 'राज विद्या' कहलाता है, अर्थात् सब विद्याओं का राजा है। राजा कहने से तात्पर्य यह है कि जैसे राजा की अध्यक्षता में उसकी प्रजा कार्य करती है, वैसे ही इस परम गोपनीय ज्ञान के आने पर व्यक्ति को स्पष्ट रूप से उसकी आत्मा की अध्यक्षता में दसों

---

१. श्रीभगवानुवाचः इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्।।१।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इन्द्रिय एवं मन, बुद्धि, अहंकार से युक्त उसका पूर्ण शरीर ही स्वयं कार्य करता प्रतीत होने लगता है। साथ ही, परम गोपनीय होने से इस ज्ञान को 'राज गुह्यम्' कहते हैं। इतना ही नहीं वरन् यह ज्ञान संसार में लिप्त रहने के कारण जो अहंकार आदि से अशुद्धता आ जाती है उसको दूर कर, अर्थात् अहंकार मिटा कर व्यक्ति को अत्यन्त पवित्र बनाता है। अतः इस गोपनीय ज्ञान को अति पवित्र कहते हैं। चूँकि यह ज्ञान प्रत्यक्ष फल देने वाला है, धर्मयुक्त है, अर्थात् व्यावहारिक दृष्टि से आचरण भी किये जाने योग्य है, और साधन करने में भी अत्यन्त सुगम है साथ ही, भगवान् के अविनाशी भाव को प्राप्त कराने वाला है, अतः इस परम गोपनीय ज्ञान को अति पवित्र, उत्तम, प्रत्यक्षफल वाला, धर्मयुक्त, साधन करने में अत्यन्त सुगम और भगवान् के अविनाशी भाव को प्राप्त कराने वाला कहते हैं।[1]

किन्तु, हे परम तपस्वी अर्जुन, जो लोग इस ज्ञान रूपी धर्म के प्रति अश्रद्धालु हैं, वे इस परम गोपनीय ज्ञान को जानने का प्रयत्न नहीं करते, अतः वे परमेश्वर के अविनाशी भाव को नहीं जान पाते। परिणामतः वे मृत्यु रूप संसार चक्र में भटकते रहते हैं, अर्थात उनका इस दुखद मृत्यु से छुटकारा नहीं हो पाता।[2] अस्तु, तू अब उस परम गोपनीय रहस्य को स्पष्ट समझ ले।

परम गोपनीय ज्ञान का रहस्यमय विवरण

देखो अर्जुन, जैसे बर्फ में जल आँख से दिखाई नहीं पड़ता किन्तु, बर्फ जल से परिपूर्ण है; जैसे वायु स्पष्ट दृष्टि-गोचर नहीं होती पर वह समस्त जगत में व्याप्त है; जैसे आकाश समस्त जगत में व्याप्त है, वैसे ही अव्यक्त परमात्म-तत्व से जिसका कि स्वरूप प्रत्यक्ष देखने में नहीं आता और जो इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि जगत का विषय नहीं है, समस्त जगत के प्राणी परिपूर्ण हैं। किन्तु, जगत के समस्त प्राणियों में यानी भूत-समुदाय में परमात्म-तत्व स्थित नहीं है। भाव यह है कि प्रायः, यह कहा जाता है कि भगवान्

---

१. राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम्।।२।।

२. अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परंतप।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि।।३।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

घट-घट वासी हैं। पर, ऐसा नहीं है। वस्तुतः परमात्म-तत्व जगत के समस्त भूत-समुदाय से सर्वथा निर्लिप्त है। चूँकि परमात्म-सत्ता से ही जगत के सूक्ष्म शरीर का स्पन्दन होता है तथा उसके कारण ही प्रत्येक जीव में चेतना दिखाई देती है, अतः ऐसा कह दिया जाता है कि भूत-समुदाय परमात्मा में स्थित है। संक्षेप में, तू यूँ समझ कि मेरे अव्यक्त स्वरूप से यह समस्त जगत व्याप्त है। समस्त प्राणी मुझ में स्थित हैं और मैं उनमें स्थित नहीं हूँ।[१]

अस्तु, जो व्यक्ति इस गोपनीय रहस्य को जानता है, वह आत्मा को निर्लिप्त समझ सकता है। वस्तुतः, परमात्म-तत्व, श्वेत मणि के सदृश है और भूत-समुदाय रंगीन वस्त्र के तुल्य हैं। यदि श्वेत मणि का संसर्ग रंगीन वस्त्र से हो तो मणि रंगीन दिखेगी पर, वस्तुतः, मणि में रंगत नहीं है। ऐसे ही भूत-समुदाय में परमात्म-तत्व भान होता है, किन्तु वास्तव में भूत-समुदाय में परमात्व-तत्व नहीं है। विवेचन से तुझे तीन बातें स्पष्ट प्रतीत होती होंगी कि एक तो अव्यक्त परमात्मा जगत में व्याप्त है, दूसरे परमात्मा भूत-समुदाय में स्थित नहीं है, और तीसरी यह बात है कि परमात्मा के आधार पर ही समस्त भूत-समुदाय स्थित होने से ऐसा कहा जाता है कि परमात्मा में भूत-समुदाय स्थित है। जबकि वास्तव में, परमात्मा में भूत-समुदाय स्थित नहीं है। वस्तुतः, आत्मा का अस्तित्व पृथक है। और प्रकृति का भी अस्तित्व पृथक् है। किन्तु, दोनों का एक ही स्वरूप दिखता है। जैसे राम और राम का शरीर, दो पृथक्-पृथक् नहीं दिखाई देते, पर जब राम अपने शरीर को 'मेरा शरीर' कह कर सम्बोधन करता है तब स्पष्ट प्रतीत होता है कि राम पृथक् है और उसका शरीर, उसके अधिकार की वस्तु के सदृश, उससे पृथक् है। अस्तु, आत्मा का अस्तित्व पृथक् है और प्रकृति का अस्तित्व पृथक् है। प्रकृति संकल्पमय है और इन संकल्पों के आधार से ही समस्त जगत में स्थित भूत-समुदाय है। आत्म-तत्व में ऐसा आकर्षण है कि जिससे प्रकृति को स्फुरण होता रहता है, जैसे चुम्बक-पत्थर से लोहे में स्पन्दन होता है। प्रकृति, त्रिगुणात्मक संकल्प मिश्रित होती है, अतः प्रकृति का स्फुरण संकल्पों का स्फुरण

---

१. मया ततमिद सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः।।४।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कहलाता है। संकल्प से सृष्टि का उदय होता है। अतः सृष्टि के भूत-समुदाय का सम्बन्ध वस्तुतः प्रकृति से ही सीधा है। किन्तु, आत्मा के अस्तित्व से ही प्रकृति का अस्तित्व है, अतः प्रकृति का अर्थात् भूत-समुदाय का भरण पोषण का कारण परमात्मा ही है, अर्थात् भूतभावना यानी भूतों को उत्पन्न करने और उन्हें बढ़ाने वाला भगवान् परमात्मा ही है। अस्तु, यह परमात्मा का रहस्य अत्यन्त गोपनीय है कि परमात्मा, प्राणियों में स्थित न रहते हुए भी, उनका भरण पोषण करता है। इस प्रकार से संसर्ग रहित, निर्लिप्त आत्मा का भूत-समुदाय के भरण पोषण हेतु भूतों में लिप्त हुआ सा मिलना, निस्सन्देह आश्चर्यजनक है एवं प्रभावयुक्त है। यही परमगोपनीय रहस्य है। भाव यह है कि यद्यपि समस्त भूत मुझमें स्थित अनुभव होते हैं पर, वस्तुतः वे भूत मुझमें स्थित नहीं है। इतना होते हुए भी मेरे ऐश्वर्य-पूर्णयोग, अर्थात् मेरे प्रभावपूर्ण मिलन को तू देख कि भूतों को उत्पन्न करने वाली मेरी आत्मा यानी मेरी प्रकृति उनका पालन पोषण करते हुए भी उनमें स्थित नहीं है।[१]

हे अर्जुन, अब तू यह भी जान ले कि जगत के समस्त प्राणी परमात्मा में कैसे स्थित हैं।

प्राणियों का परमात्मा में स्थित होने का रहस्य

देखो अर्जुन, तू ऐसा निश्चय पूर्वक समझ ले कि जैसे सर्वत्र भ्रमण करने वाला महान् वायु आकाश में स्थित है, वैसे ही समस्त जीव (भूत) मुझमें स्थित हैं।[२]

भाव यह है कि समस्त भूत मुझमें ऐसे स्थित हैं जैसे कि जगत के समस्त प्राणियों के संकल्पों की तरंगें, अखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त संकल्पों की तरंगों को पालन करने वाली वैष्णवी शक्ति में स्थित हैं यानी मेरे में स्थित हैं। क्योंकि 'मैं' शब्द वैष्णवी शक्ति को ही वस्तुतः सम्बोधन कर रहा है। जिस प्रकार मनुष्य के शयन करते ही उसकी संकल्प तरंगें उसके मस्तिष्क में, जहाँ से वे उत्पन्न हुई

---

१. न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम्।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः।।५।।

२. यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय।।६।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

थीं, वहीं लय हो जाती हैं, उसी प्रकार यह भी कहा जा सकता है कि यदि मनुष्य की भाँति सृष्टि को उत्पन्न करने वाली प्रकृति भी शयन करे और पुनः जागृत हो तो समस्त सृष्टि की भी संकल्प तरंगें सामूहिक रूप से अखिल ब्रह्माण्ड की प्रकृति में कल्प के अन्त होते ही अर्थात् जब अखिल ब्रह्माण्ड की वैष्णवी शक्ति विश्राम करने को उद्यत हुई प्रतीत होती है, यानी जिसे ब्रह्मा की रात्रि का प्रारंभ कहते हैं, तब सब संकल्प तरंगें भी अखिल ब्रह्माण्ड की प्रकृति में लय हो जाती हैं, और पुनः अखिल ब्रह्माण्ड की वैष्णवी शक्ति जब जागरूक स्थिति में आई हुई प्रतीत होती है, यानी जिसे ब्रह्मा के दिन का आरंभ कहते हैं, समस्त संकल्प तरंगों के रूप में समस्त प्राणियों का पुनः आविर्भाव हो जाता है। इस प्रकार कल्प का अन्त भूतों के संकल्पों की तरंगों का अन्त कहा जाता है और कल्प का आदि उनका उदय कहा जाता है। अस्तु, संक्षेप में, हे अर्जुन, तू यूँ समझ कि कल्प के अन्त में समस्त प्राणी मेरी प्रकृति में समा जाते हैं और कल्प के प्रारम्भ में, मैं उनको फिर उत्पन्न करता हूँ।[1]

इसी रीति से वैष्णवी शक्ति की प्रकृति के आधार से बारम्बार कल्प के आदि में, संकल्प तरंगें विवश हुई उत्पन्न होती हैं, और कल्प के अन्त में लय हो जाती हैं। अस्तु, तू यूँ समझ कि अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार विवश हुए बर्तने वाले इस भूत-समुदाय को मैं अपनी प्रकृति, यानी अखिल ब्रह्माण्ड की त्रिगुणात्मक माया का अवलम्बन लेकर पुनः -रचता हूँ।[2]

चूँकि मैं नित्य आत्म-स्वरूप में स्थित रहता हूँ, अतः मैं आत्म-स्वरूप में स्थित होकर ही अपने को ''मैं'' कहकर सम्बोधन करता हूँ। अस्तु, मेरी प्रकृति जो अखिल ब्रह्माण्ड की त्रिगुणात्मक माया है वही संकल्पों की तरंगें उत्पन्न करने और उन्हें लय करने में योग देती है। किन्तु, लगता ऐसा है कि मैं ही संकल्पों की तरंगें उत्पन्न अथवा लय कर रहा हूँ। क्योंकि मुझमें और मेरी प्रकृति में ऊपर से कोई

---

१. सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम्।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम्।।७।।

२. प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः।।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात्।।८।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अन्तर नहीं दिखता, अतः बुद्धि से सोचने पर ही 'मैं' और 'मेरी' प्रकृति' पृथक्-पृथक् दिखाई दे सकेगी। जैसे कि 'राम' और 'राम की प्रकृति' है तो भिन्न-भिन्न परन्तु बाहर से देखने वालों को एक राम ही दिखाई देता है। किन्तु, बुद्धि से समझ में आ सकता है कि 'राम' और 'राम की प्रकृति' भिन्न-भिन्न है। अस्तु, मैं अपनी प्रकृति से भिन्न हूँ। अतः प्रकृति के कार्यों के प्रति मैं आसक्ति रहित एवं उदासीन हूँ, क्योंकि उनसे मेरा सम्बन्ध नहीं है। इस प्रकार मुझको अर्थात् आत्म-तत्व को वे संकल्प की तरंगें नहीं बांधती। चूँकि संकल्पों की तरंगों को ही कर्म कहते हैं, अतः यह कहा जाता है कि आत्मा अथवा परमात्मा को कर्म नहीं बांधते, अर्थात् परमात्मा, कर्म-बन्धन से सर्वथा मुक्त है। अस्तु, संक्षेप में, हे अर्जुन, तू यूँ समझ कि उन कर्मों में, यानी प्रकृति रचना के कामों में, मैं उदासीन की भाँति स्थित हूँ एवं आसक्ति रहित हूँ। अतः वे कर्म मुझे नहीं बांधते।[१]

हाँ, इतना अवश्य है कि मैं इस तथ्य को अस्वीकार नहीं कर सकता कि प्रकृति के कार्यों का मैं साक्षी नहीं हूँ। साथ ही, मेरी सकाशता में ही प्रकृति समस्त कार्य करती है। अतः मेरी अध्यक्षता में प्रकृति ही त्रिगुणात्मक जड़ व चेतन सृष्टि को रचने का कार्य करती है। इसी दृष्टि कोण से यह कहा जाता है कि परमात्मा की अध्यक्षता में प्रकृति का कार्य होता रहता है, अर्थात् संसार के जीवों के उत्पन्न होने और लय होने का चक्र (आवागमन का चक्र) घूमता रहता है। विवेचन से तुझे स्पष्ट हो गया होगा कि परमात्मा का आवागमन नहीं होता; केवल प्रकृति निर्मित सृष्टि का आवागमन होता रहता है। परमात्मा अध्यक्ष की भाँति साक्षी मात्र है अस्तु, हे अर्जुन, मेरी अध्यक्षता में प्रकृति समस्त चराचर जगत को उत्पन्न करती है; इस हेतु यह संसार चलता रहता है।[२]

अब यह भाव भी तुझे स्पष्ट होना आवश्यक है कि जन साधारण

---

१. न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय।
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु।।९।।

२. मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते।।१०।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मुझ कृष्ण को आत्म-स्वरूप में स्थित होने पर भी, अर्थात् परमात्म-भाव में होने पर भी 'साधारण मनुष्य' मात्र ही क्यों मानता है।

देखो अर्जुन, आत्म-स्वरूप के भाव में स्थित ज्ञानी व्यक्ति, अवतारी महापुरुष भी एक मानव के आकार का ही तो होता है। अतः उसे भी वे लोग मानव मात्र ही समझते हैं। उन्हें यह ज्ञान नहीं होता कि मानव के तीन विग्रह होते हैं-स्थूल, सूक्ष्म और आत्मा। साथ ही अहंभाव का प्रतीक जीवात्म-भाव इन तीनों से पृथक् भी रह सकता है। क्योंकि, व्यक्ति का जीवात्मा जब अपने स्थूल शरीर का ही विचार करता रहता है तब उसे अपने शरीर पर ही आसक्ति रहती है और वह अपने को 'मैं यह शरीर ही हूँ" ऐसा मानता है। किन्तु, उस व्यक्ति का जीवात्मा जब सूक्ष्म शरीर में आसक्त रहता है तब वह अपने विचारों में ही तल्लीन रहता है; ऐसी स्थिति में न तो उसे स्थूल शरीर का भान होता है और न आत्मा का, यद्यपि इन दोनों का ही उसके शरीर में पूर्ण समावेश है। जैसे कभी-कभी तूने अनुभव किया होगा कि तू अपने महल के बरामदे में बैठा पुस्तक पढ़ रहा है। पुस्तक इतनी मनोरंजक है कि तेरा चित्त पूर्ण रूप में तल्लीन है। उसी समय तेरे सामने से एक जुलूस निकल जाता है और उसके आगे आगे बाजे भी बजते जाते हैं। परन्तु, तुझे पता भी नहीं चलता कि तेरे सामने से एक जनसमारोह भी धूमधाम से निकल गया है। जब लोगों द्वारा तुझे जुलूस का पता चला जब तूने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा होगा कि "मैं तो पढ़ने में तल्लीन था, मुझे कुछ भी समारोह के निकलने का पता नहीं चला" अस्तु, व्यक्ति का जीवात्मा जब सूक्ष्म शरीर में (विचारों में) तल्लीन रहता है तब उसे अपने दोनों विग्रहों (स्थूल व सूक्ष्म शरीर) में विस्मृति रहती है; यद्यपि वे दोनों विग्रह उसके शरीर में यथावत् स्थित हैं। चूँकि जन साधारण अपने तीनों विग्रहों से परिचित नहीं होता, अतः उसको वह ज्ञानी महापुरुष, आत्म-रूप के भाव में स्थित होने पर भी, अपना जैसा व्यक्ति ही दिखाई देता है। साथ ही, अज्ञानीजन की

आत्म-स्वरूप में स्थित श्रीकृष्ण सदृश अवतारी महापुरुष में परमात्म-भाव की अवहेलना का कारण

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रायः, यह धारणा होती है कि परमात्मा व्यक्तियों से पृथक् है। जिस व्यक्ति पर परमात्मा प्रसन्न हो जाता है, उसे वह दर्शन दे देता है। उनकी दृष्टि में व्यक्ति के अन्तर्गत परमात्मा कभी नहीं हो सकता। अतः वे लोग एक व्यक्ति को परमात्मा नहीं मानते। अब तुझे स्पष्ट हो गया होगा कि प्राणी मात्र की गति के मूल कारण, अर्थात् सबके महान् ईश्वर रूप, आत्म-तत्व के श्रेष्ठ अथवा को न जानने वाले अज्ञानी जन 'मनुष्य शरीर' को धारण करने वाले आत्म-तत्व के ज्ञानी महात्मा को भी साधारण व्यक्ति ही मानते हैं। भाव यह है कि मूर्ख लोग मेरे परम भाव को न जानने के कारण मानव शरीर धारी भूतों के महान ईश्वर मुझको महत्व नहीं देते, यानी मेरी अवहेलना करते हैं।[१]

सत्य ही, ऐसे अज्ञान अंधकार में पड़े हुए अज्ञानी जन स्थूल शरीर में आसक्त हैं, अतः वे तमोगुणी स्वभाव के होते हैं। वे स्थूल शरीर के सौंदर्य में ऐसे मोहित रहते हैं जैसे कि प्रायः असुर अथवा राक्षस मोहित पाए जाते हैं। उनकी समस्त आशाऐं अस्थायी और सारहीन होती हैं। उनका ज्ञान भी उपयोगी सिद्ध नहीं होता, एवं उनके कर्मों से भी स्थायी सुख देने वाला परिणाम नहीं निकलता है। सारांश यह है कि अज्ञानी जन राक्षसी एवं आसुरी प्रकृति के, अर्थात् मारना, लूटना, ठगना आदि क्रूर कर्मो के आश्रय रहते हैं। अस्तु, जो लोग मेरी अवहेलना करते हैं वे वस्तुतः, वृथा आशा, वृथा कर्म एवं वृथा ज्ञान वाले अज्ञानी हैं। वे राक्षसों एवं असुरों को मोहित करने वाले तमोगुणी स्वभाव के ही आश्रित रहते हैं।[२]

किन्तु, जब वे अज्ञानी वृथा आशा, वृथा कर्म तथा वृथा ज्ञान के परिणाम-स्वरूप "सब रात पीसा और पारे में सकेला" कहावत के अनुसार दुःखी हो जाते हैं तब उनकी प्रवृत्ति दैवी प्रकृति की ओर आकर्षित होती है। अतः जो दैवी प्रकृति के आश्रित भक्त जन होते हैं उनकी गतिविधि भी अब तू जान ले।

---

१. अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्।।११।।

२. मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहनीं श्रिताः।।१२।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दैवी प्रकृति के आश्रित भक्तजन की कार्य प्रणाली

देखो अर्जुन, आसुर और राक्षसी प्रकृति से भिन्न, दैवी, अर्थात् सत्वगुणी प्रकृति के आश्रित रहकर जो महात्मा भक्तजन स्वधर्म-पालन करते हैं, वे अनन्य मन से भगवान् को अविनाशी एवं सब जीवों की उत्पत्ति आदि का मूल कारण जान कर भजते हैं।[1]

वस्तुतः, वे भक्त-जन अपने मन को किसी अन्यत्र उपासना में न लगाकर सब भूतों के आदि एवं अविनाशी भगवान् के निमित्त कर्म करने में ही अपने निश्चय को दृढ़ रखते हैं। इस प्रकार से वे सदा भगवान् का कीर्त्तन करते रहते हैं, अर्थात् वे प्रत्येक कर्म को करते भी जाते हैं और मन में भगवान् के नाम का बारबार स्मरण भी करते रहते हैं, यानी वे भगवान् का काम कर रहे हैं, ऐसा समझते हैं। वे अपने मन को यदि अहंकार के वशीभूत होते देखते हैं तो वे तुरन्त ही उसको भगवान् की ओर लाने का यत्न करते हैं। वे नित्य विक्षेप-रहित चित्त से भगवान् की उपासना करते हैं। साथ ही, जैसे एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से जब मिलता है तब उसे नमस्कार करता है और जब पृथक् होता है तब भी उसे नमस्कार करता है, वैसे ही भगवान् का भक्त प्रातः उठकर भगवान् को नमस्कार करके दैनिक कर्मों को करता है, अर्थात् वह यह समझता है कि भगवान् ने उसे इन कर्मों को करने का आदेश दिया है तथा संध्या को सोते समय पुनः भगवान् को नमस्कार करता है, अर्थात् वह समझता है कि वह भगवान् का आदेश पालन कर अब शयन कर रहा है। अस्तु, भगवान् का भक्त नित्य भगवान् को प्रेम से इसी प्रणाली के अनुसार नमस्कार करता है। संक्षेप में तू यूँ समझ कि मेरे में दृढ़ निश्चय वाले भक्त-जन निरन्तर कीर्तन यानी मेरा स्मरण करते हुए और मेरे लिये ही कर्म करने का प्रयत्न करते हुए और मेरे को बारंबार प्रणाम करते हुए एवं मेरे ही भाव में नित्य-युक्त हुए, भक्तिभाव से मुझे उपासते हैं, यानी कर्म करते हुए मेरी समीपता का अनुभव करते हैं।[2]

---

१. महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्।।१३।।

२. सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते।।१४।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सत्य ही, भगवान् की उपासना करने वाले भक्त कई श्रेणियों में आते हैं। कुछ भक्त तो ज्ञानी होते हैं, जो आत्म-स्वरूप में स्थित रहकर कार्यों का कर्त्ता सूक्ष्म-शरीर को मानते हैं, अर्थात् उनकी दृष्टि से "गुण गुणों में ही बर्त रहे हैं," इस विचारधारा से आत्मा में स्थित होकर कर्म करने को भगवान् की ज्ञान-यज्ञ से पूजा करते हुए उपासना करना कहा जाता है। अस्तु, कुछ भक्त भगवान् की ज्ञान-यज्ञ से पूजा करते हुए उनकी उपासना करते हैं। कुछ भक्तजन कर्म करते हुए प्रत्येक वस्तु भगवान् वासुदेव-मय है, ऐसी धारणा रखते हैं। उनकी दृष्टि में सब कुछ वासुदेव ही वासुदेव है। वासुदेव के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं। अतः, ऐसी विचारधारा रख कर कर्म करने वाले भक्तों के प्रति यह कहा जाता है कि वे भगवान् की एकत्व-भाव से उपासना करते हैं। कुछ भक्तजन भगवान् को अपने से पृथक्, अपने स्वामी के भाव से उसकी उपासना करते हैं। ऐसे भक्त अपने को भगवान् का सेवक समझते हैं। और वे प्रायः भगवान् के विग्रह की सेवा, यानी भगवान् को प्रातः जगाना, स्नान कराना, भोग लगाना, आरती उतारना, शयन कराना आदि कर्मों द्वारा करते हैं। इनके अतिरिक्त भी अनेक भक्तजन विश्वरूप विराट् भगवान् की उपासना उनके विविध रूपों में करते हैं। संक्षेप में, तू यूँ समझ कि कोई भक्तजन तो मुझ विराट स्वरूप परमात्मा को ज्ञानयज्ञ के द्वारा, एक ही भाव से, यानी सब में व्याप्त भाव से पूजते हैं। कोई अपने से पृथक् मुझे समझकर पूजते है, अथवा और भी अनेक प्रकार से मेरी उपासना करते हैं।[1]

संभवतः, तू मेरे यानी भगवान् के विविध रूपों की उपासनाओं को भी जानने का इच्छुक होगा, अतः अब, तू मेरे विविध रूपों को भी जान ले।

मेरे यानी भगवान् के विविध रूप

वस्तुतः, मुझे यानी भगवान् को विश्वतोमुख कहा जाता है। क्योंकि, भगवान्, यानी "मैं" सर्वत्र व्याप्त हूँ। जहां भी दृष्टि जाती है वहाँ ही भगवान् की सत्ता अनुभव होती है। जिस शब्द को तू उच्चारण करे उसमें भी भगवान् की सत्ता व्याप्त हुई अनुभव होगी। उदाहरणार्थ यज्ञ कर्म को ही तू ले। यज्ञ के जिस अंग का अथवा उसके उपक्रम का तू नाम लेगा तो

---

१. ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते।
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम्।।१५।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तुझे यज्ञ के उस अंग अथवा उस उपक्रम में भी भगवान् की सत्ता व्याप्त हुई अनुभव होगी। अतः, भगवान् को सर्वतोमुख कहा जाता है और सभी वस्तुओं द्वारा उनकी उपासना की जा सकती है। अस्तु, क्रतुयज्ञ, अर्थात्, श्रौत धर्म प्रतिपादित अश्वमेध्य यज्ञ, अग्निष्टोम आदि यज्ञ अर्थात् स्मार्त धर्म के प्रतिपादित यज्ञ बलि-वैश्वदेवयज्ञादि; स्वधा, अर्थात् प्राणीमात्र का खाद्य अन्न जिसका प्रयोग हवन में करते हैं; प्राणियों के रोग निवारणार्थ दी जाने वाली औषधियाँ, जिनका भी प्रयोग प्रायः हवन में करते हैं, यज्ञ में बोले जाने वाले मंत्रादि; घृत, अग्नि एवं अन्य हवन सामग्री इन सब में ही भगवान् की सत्ता व्याप्त है, अर्थात् भगवान् की सत्ता से ही उनका अस्तित्व है। इतना ही नहीं वरन् हुतम्, यानी हवन रूप क्रिया भी मैं ही हूँ, अर्थात् हवन की क्रिया भी मेरी सत्ता से सम्पन्न होती है।[1]

इसी, प्रकार इस जगत का धारण-पोषण करने वाला, अथवा यूँ समझ कि माता, पिता, पितामह, सब मैं ही हूँ। यहाँ तक कि जो कुछ भी जानने योग्य है अथवा पवित्र है वह तथा ॐकार (प्रणव), ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद भी मेरी यानी भगवान् की सत्ता से ही अस्तित्व रखते हैं।[2]

साराँश यह है कि मेरी सत्ता ठीक वैसे ही व्याप्त है जैसे एक राजसत्ता उस राज्य के छोटे से छोटे कर्मचारी, चौकीदार या चपरासी से लेकर बड़े से बड़े अधिकारी तक में व्याप्त है। साथ ही, राज्य के उत्थान एवं पतन में भी वही सत्ता कारण है। संक्षेप में, उस राज्य के अन्तर्गत स्थित सभी पदार्थों में राज्य की सत्ता ही व्याप्त होती है। यद्यपि, राज्य सत्ता स्पष्ट दिखाई नहीं देती किन्तु, यह निर्विवाद है कि राज्य सत्ता से ही उस राज्य की गति है। उस सत्ता को उस राज्य का स्वामी, भर्त्ता या साक्षी आदि जो कुछ तू कहे सब कुछ वही है। वस्तुतः अखिल ब्रह्माण्ड के आधारभूत भगवान् (परमात्म-तत्व) की सत्ता से ही सब की गति है। भगवान् की सत्ता ही सब की पोषक है। सबका प्रभु, सबका साक्षी, सबका निवास स्थान, सबकी शरण

---

१. अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम्।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम्।।१६।।

२. पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः।
वेद्यं पवित्रमोङ्कार ऋक्साम यजुरेव च ।।१७।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

का स्थान, सब का स्वार्थ रहित मित्र, सब की उत्पत्ति या प्रलय का कारण, सबकी स्थिति का कारण, सब संकल्पों का निधान (भण्डार), यहाँ तक कि सदा उत्पत्ति करते रहने वाला अविनाशी बीज का अस्तित्व भी मेरी यानी भगवान् की सत्ता से है, अर्थात् परमात्म-तत्व की सत्ता से रहित किसी भी वस्तु का अस्तित्व नहीं है।१

वस्तुतः, हे अर्जुन, भगवान् की सत्ता ही सूर्य रूप से ताप (गर्मी) उत्पन्न करती है। फिर सूर्य की किरणों के माध्यम से ही वर्षा को रोके रखती है और वर्षा करती है। इसी प्रकार जो जीवन-मुक्त स्थिति अर्थात् अमृतपद है तो अथवा, जन्म लेना और मृत्यु को प्राप्त होना है तो, एवं सत् अर्थात् अपरिवर्तनशील और असत् अर्थात् परिवर्तनशील जो कुछ भी है सब भगवान् अर्थात् परमात्म-तत्व की सत्ता से ही है यानी सब कुछ मैं ही हूँ।२

विवेचन से तुझे स्पष्ट हो गया होगा कि जब सभी रूपों का अस्तित्व भगवान् की सत्ता से ही है तो जो भी उपासक जिस रूप से भगवान् की सत्ता की उपासना करता है वह भगवान् की उसी सत्ता के भाव को प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार भगवान् के जो जिस भाव के भक्त हैं वे भगवान् के उसी भाव की सत्ता को प्राप्त हो जाते हैं।

अस्तु, जो सकामी पुरुष यज्ञ द्वारा भगवान् की पूजा करते हैं और जो विषयों में अभी आसक्त हैं, उनकी गति से भी अब तुझे मैं परिचित किये देता हूँ।

यज्ञ द्वारा भगवान् की पूजा करने वाले सकामी पुरुषों की गति

वस्तुतः जो व्यक्ति तीनों वेदों में बताए हुए विधान के अनुसार सकाम कर्मों के करने वाले हैं; जो सोमरस के पीने वाले हैं, यानी चन्द्रमा के अर्थात् मन के आनन्द को लेने वाले हैं, यानी मन से जो नाना संकल्पों को पूर्ण करने में लगे।

---

१. गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम्।।१८।।

२. तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्याम्युत्सृजामि च।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन।।१९।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हुए हैं; जिन्होने अब पाप कर्म, अर्थात् दूसरों को हानि पहुँचाने वाले कर्मों से अपने को मुक्त कर लिया है, किन्तु अपनी महत्वाकांक्षा पूर्ण करना चाहते हैं; ऐसे सकामी व्यक्ति अनेक प्रकार के फल देने वाले यज्ञों द्वारा मेरी पूजा करते हैं, यानी यज्ञों को करते हैं। और यज्ञों के परिणामस्वरूप वे स्वर्ग को चाहते हैं, अर्थात् वे ऐसी गति (स्थिति) चाहते हैं जिससे कि वे आश्चर्यपूर्ण भोगों को भोग सकें। अस्तु, वे सकामी व्यक्ति यज्ञों के पुण्यफलस्वरूप स्वर्गलोक, अर्थात् ऐश्वर्यमय जीवन को प्राप्त होकर दिव्य देवताओं के भोगों को भोगते हैं यानी अलौकिक पदार्थों की दिव्य चमक से चकाचौंधित हुए नाना प्रकार के भोगों को भोगते हैं।[1]

सत्य ही, वे उस विशाल वैभवपूर्ण जीवन को भोगकर यज्ञ-कर्मों द्वारा प्राप्त पुण्यफल भोगने की अवधि समाप्त होने पर, पुनः साधारण मनुष्य के जीवन को ही प्राप्त होते हैं इस प्रकार तीनों वेदों में बताये हुए सकाम कर्मों के करने में आसक्त, भोगों को भोगने की महत्वाकांक्षा वाले, व्यक्ति आवागमन को प्राप्त होते हैं।[२]

भाव यह है कि भोगों की कामना वाले व्यक्ति बारम्बार सम्पन्न घराने में जन्म लेकर वैभवपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं और पुण्य समाप्त होने पर या तो उसी जीवन में ही सम्पन्न व्यक्ति से घट कर पुनः साधारण व्यक्ति की स्थिति में आ जाते है, अथवा मृत्यु के उपरान्त साधारण मानव परिवार में पुनः जन्म ले लेते हैं। इस प्रकार पुण्य के फलस्वरूप सांसारिक भोगों के साधनों से सम्पन्न परिवार में जन्म लेना, पुण्य के फल का अन्त होने पर शरीर छोड़ना और पुनः साधारण मनुष्य के परिवार में जन्म लेना, अथवा पुण्य -

---

१. त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा।
यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोक -
मश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान्।।२०।।

२. ते तं भुक्तवा स्वर्गलोकं विशालं।
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना
गतागतं कामकामा लभन्ते।।२१।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

फल के परिणामस्वरूप साधारण मानव के परिवार में जन्म लेकर भी सम्पन्न हो जाना, और पुण्य कर्मों के फल भोगकर पुनः सम्पन्न परिवार से घट कर साधारण परिवार के व्यक्ति वन जाना आदि से तू यही समझ कि सकामी पुरुषों का कर्मानुसार चढ़ाव और उतार होता रहता है, अर्थात् पुण्य कर्मों के प्रभाव से समृद्धि में चढ़ाव और पुण्य क्षीण होने पर समृद्धि में उतार आता रहता है।

किन्तु, जो व्यक्ति अनन्य भाव से भगवान् के भक्त होते हैं उनकी साधना निर्विघ्न पूर्ण हो जाती है और अंत में वे भगवान् को प्राप्त हो जाते हैं। अतः अब भक्तों की साधना में क्यों विघ्न नहीं आते और वे अन्त में भगवान् को कैसे प्राप्त हो जाते हैं, इस तथ्य को भी मैं स्पष्ट करता हूँ। तू अच्छी तरह से समझ ले।

देखो अर्जुन, तुझे अनुभव होगा कि जो व्यक्ति पूर्णरूपेण जिस व्यक्ति के आश्रित रहता है, तो सत्य ही, जो आश्रय देता है वह व्यक्ति अपने आश्रित व्यक्ति की देखरेख रखने में सदा सावधान रहता है। जैसे

भगवद्-भक्त की सुरक्षित साधना एवं भगवत्प्राप्ति

कि माता-पिता अपने आश्रित अपनी संतान की देखरेख रखते हैं, वैसे ही भगवान् की वैष्णवी शक्ति भी अपने भक्त की, यानी उस व्यक्ति की जो ईश्वरार्पण बुद्धि से सब काम करता है और एक मात्र भगवान् की वैष्णवी शक्ति में ही पूर्ण विश्वास रखता है, देखरेख रखती है। चूँकि, उस अनन्य भक्त के द्वारा वैष्णवीशक्ति का ही चिन्तन निरन्तर होता रहता है, अतः उस भक्त के मस्तिष्क के कोषों में वैष्णवी शक्ति के स्मृति चिह्न विशेष रूप से पुष्ट होते रहते हैं। उन पुष्ट चिह्नों का प्रभाव आसपास के वायुमण्डल में आच्छादित होता जाता है। परिणामतः भक्त के ही अनुकूल वायुमंडल निर्माण होता रहता है। यह अनुकूल वायुमंडल उस भक्त की साधना में आने वाले विक्षेपों को सहज भाव से ही इस प्रकार दूर कर देता है जैसे कि खलिहान में कृषक जब भूसा सहित अन्न को बरसाता है और अनुकूल वायु चलने लगती है तब वह अनुकूल वायु, भूसा मिश्रित अन्न में से भूसे को उड़ा देती है। अस्तु, एक ही प्रकार से एक चित्त होकर जब एक ही विचार का निरन्तर चिन्तन होता है तब वह चिन्तन उस विचार को यथेष्ट पुष्ट कर देता है। फलतः विपरीत स्थिति उसे निर्बल नहीं बना पाती। इस प्रकार

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ईश्वरार्पण बुद्धि से निष्काम कर्म करने वाले अनन्य भक्तों की साधना को वैष्णवीशक्ति निर्विघ्न बना देती है। अतः यह कहा जाता है कि भगवान् के अनन्य भक्तों का योगक्षेम, यानी इष्ट से मिलने की साधना का संरक्षण भगवान् स्वयं ही करते रहते हैं, अर्थात् वैष्णवी शक्ति स्वयमेव ही संरक्षण कर देती है। अस्तु, जो भक्त लोग अनन्य भाव से मेरा चिन्तन करते हैं और अच्छी तरह से मेरी उपासना करते हैं, उन नित्य युक्त यानी नित्य ही मुझमें मन को तल्लीन रखने वाले व्यक्तियों के योगक्षेम का उत्तरदायित्व मैं अपने ऊपर ले लेता हूँ।[1]

किन्तु, जो भक्त श्रद्धालु तो हैं, पर वे वैष्णवी शक्ति के (भगवान् के) सीधे उपासक न होकर विभिन्न फल देने वाले विभिन्न देवताओं को, यानी विभिन्न शक्तियों को यज्ञादि द्वारा पूजते हैं, उनका इस प्रकार देवताओं का पूजन करना अविधिपूर्वक है। वे उस विधि को नहीं जानते कि एक-एक देवता की पूजा करके वे वैष्णवी शक्ति की ही पूजा कर रहे हैं और जो उन्हें उनके द्वारा फल प्राप्त होना प्रतीत होता है वह फल भी वस्तुतः वैष्णवी शक्ति द्वारा ही उन्हें प्रदान किया गया है। अस्तु, हे अर्जुन, जो लोग अन्य देवताओं के भक्त हैं और श्रद्धा से उनकी पूजा करते हैं वे वस्तुतः पूजते तो मुझे ही हैं, पर उनका पूजना विधि-पूर्वक नहीं है।

क्योंकि, वास्तव में समस्त यज्ञों का भोक्ता और उनका अधिनायक (स्वामी) भी वही वैष्णवी शक्ति मूल रूप में है। निस्सन्देह, अखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त वैष्णवी शक्ति की प्रेरणात्मक वृत्ति से उस व्यक्ति विशेष के मस्तिष्क के कोषों में अंकित स्मृति चिह्न सबल हुए हैं, जिसके परिणामस्वरूप उसके द्वारा यज्ञादि का आयोजन किया गया है। इस प्रकार वे लोग मूल वैष्णवी शक्ति के प्रभाव को तत्व से नहीं जानते। अतः वे यज्ञ द्वारा एक सीमित शक्ति की आराधना करते हैं। परिणामस्वरूप वे उसका जो फल पाते हैं, वह भी सीमित होता है जो शीघ्र ही समाप्त हो जाता है।

---

१. अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।।२२।।

२. येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्।।२३।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इसी प्रकार उन्हें बारम्बार प्रयत्न करना पड़ता है, अर्थात् वे अपनी वासना की पूर्ण तृप्ति के लक्ष्य से च्युत (भ्रष्ट) हो जाते हैं। अस्तु, संक्षेप में तू यूँ समझ कि यद्यपि मैं ही सब यज्ञों का भोगने वाला हूँ और मैं ही स्वामी हूँ तथापि वे लोग मुझको तत्व से नहीं जानते अतः वे गिर जाते हैं, अर्थात् उनके उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो पाती।[1]

सत्य ही, अतृप्त वासनाओं से प्रेरित हुए लोग पुनर्जन्म को प्राप्त होते हैं। यदि उनमें देह त्याग के समय सत्वगुणी वासनाएँ प्रमुख रूप से रहती हैं तो वे देवताओं को पूजनेवाले, अर्थात् सत्वगुणी शक्ति के उपासक देवताओं को प्राप्त होते हैं, यानी सत्वगुणी वैभव की प्रधानता रखने वाले परिवार में जन्म लेते हैं। क्योंकि, दैवी प्रकृति अपनी इच्छा-पूर्ति के लिये सदैव वैष्णवी शक्ति अर्थात् विष्णु भगवान् यानी सत्वगुण के प्रमुख स्वरूप पर ही अवलम्बित रहती है।

यदि उन व्यक्तियों की वासनाऐं देह त्याग के समय अपने परिवार के वयोवृद्ध पिता, ताऊ, चाचादि (पितरों) के सदृश वैभव प्राप्त करने की होती हैं तो वे अपने पितरों के ही भावों को लेकर जन्म लेते हैं। और यदि उन व्यक्तियों के भाव तमोगुण अर्थात् राक्षसी स्वभाव के होते हैं तो वे व्यक्ति राक्षसों के भाव को प्राप्त होते हैं अर्थात् तमोगुणी भाव लेकर जन्म लेते हैं। इसी प्रकार यदि वैष्णवी शक्ति के उपासक ईश्वरार्पण बुद्धि से निष्काम कर्म करने में प्रवृत्त हुए देह त्यागते हैं तो वे निष्काम कर्मयोगी वैष्णवी शक्ति के भाव को ही प्राप्त होते हैं, अर्थात् वे वैष्णवी शक्ति के समान परोपकार के हेतु ही, यदि आवश्यकता हुई तो, जन्म लेते हैं, अन्यथा उनका पुनर्जन्म नहीं होता। अस्तु, विवेचन से तुझे स्पष्ट हो गया होगा कि देह त्यागने पर देवताओं के उपासक देवताओं के सदृश भाव लेकर जन्म लेते हैं, पितरों के उपासक पितरों के सदृश और भूतों के पुजारी भूतों जैसे ही भाव लेकर जन्म लेते हैं और जो मेरे उपासक हैं वे मेरे को ही प्राप्त होते हैं अर्थात् मेरे सदृश ही लोक-हितार्थ जन्म लेते हैं।[2] ऐसे ही यदि कोई वैष्णवी शक्ति के

---

१. अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च।
न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते।।२४।।

२. यान्ति देवव्रता देवान्पितॄन्यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्।।२५।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भाव को प्राप्त होकर परमात्म-तत्व के भाव को प्राप्त करना चाहता है तो प्राप्त कर सकता है। अस्तु, अब मैं तुझे वैसी ही युक्ति यानी उपासना का ढंग बताता हूँ जिस युक्ति से तू सहज भाव से ही वैष्णवीशक्ति के भाव को प्राप्त होकर परमात्म-तत्व के भाव को प्राप्त हो जावेगा।

वैष्णवी शक्ति के भाव को प्राप्त होकर परमात्म-तत्व के भाव को प्राप्त होने की अत्यन्त सुगम विधि

देखो अर्जुन, वैष्णवी शक्ति के भाव का अभ्यास जब साधक को दृढ़ हो जाता है तब उसके जीवन की प्रत्येक क्रिया परमेश्वर के निमित्त सहज भाव से होने लगती है। यहाँ तक कि जो कुछ कार्य वह करता है उसकी छोटी से छोटी क्रिया के परिणाम के उपभोक्ता भी उसकी दृष्टि में भगवान् ही हैं। जैसे, यदि वह लौकी, अमरूद आदि के बीजों को बोता है तो बीज बोने की क्रिया करता हुआ तो वह स्वयं ही दिखाई पड़ता है, पर वास्तव में उसकी यह दृढ़ धारणा होती है कि ये बीज भगवान् के उपभोग के लिये ही बोये जा रहे हैं। जब बीजों के अंकुरित होने पर उनमें पत्ते आते हैं, तदुपरान्त जब पुष्प आते हैं अथवा पुष्प आने पर फल आते हैं अथवा फलों के परिपक्व होने पर जब उनमें जल अर्थात् रस आ जाता है तब भी वह इन समस्त क्रियाओं को भगवान् के उपभोग के निमित्त ही समझता है।

अस्तु, मेरे कहने का यही तात्पर्य है कि जो व्यक्ति भक्ति भाव से पत्र, पुष्प, फल और जल मुझे अर्पण करता है, उस प्रेमी भक्त का, यानी जिसका मन मेरे में लगा हुआ है, वह प्रेमपूर्वक अर्पण किया पत्र पुष्पादि मुझे ही प्राप्त हो जाता है, यानी उनका मैं ही उपभोग करता हूँ।' ऐसा मेरे भक्त को स्पष्ट भान होने लगता है कि भगवान् उसके हृदय में विराजमान हैं और आहार या जलपानादि वैसे तो वही करता है, परन्तु उसकी दृष्टि में वस्तुतः भगवान् ही आहारादि ग्रहण करते हैं।

अस्तु, भक्ति भाव से प्रेमपूर्वक अर्पण किए हुए पत्र, पुष्प, फल

---

१. पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः।।२६।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अथवा जल को वैष्णवीशक्ति ही भगवान् के रूप में उस व्यक्ति के स्थूल शरीर के एक अंग 'मुख' द्वार से ग्रहण करती है। इस प्रकार ईश्वरार्पण बुद्धि से प्रयत्नशील निष्काम कर्मयोगी, कर्म की प्रारम्भिक अवस्था से लेकर अंतिम अवस्था तक प्रत्येक क्रिया भगवान् के निमित्त ही करता है। परिणामस्वरूप वह कर्त्तापन के भाव से सर्वथा मुक्त हो जाता है और शुद्धसच्चिदानन्द के स्वरूप में स्थित होने लगता है।

सत्य ही, यदि कोई व्यक्ति भगवान् का भक्त होना चाहता है तो उसे भक्ति करने की शैली भी आना चाहिये। वह शैली यही है कि स्वधर्म-पालन के निमित्त जो आवश्यक कर्म व्यक्ति को करने पड़ते हैं अथवा शारीरिक स्वास्थ्य के हेतु जो आहार या जलपान उसे करना पड़ता है अथवा जो आवश्यक नित्यनियम यज्ञ, पूजन, भजन, स्वाध्याय आदि उसे करना पड़ता है, अथवा जो आवश्यकतानुसार उसे दान आदि देना पड़ता है अथवा स्वधर्म-पालन में विशेष परिस्थिति आने पर जो अधिक श्रम करके द्रव्यादि उपार्जन करना पड़ता है, उन सभी कर्मों को भगवान् के अर्पण करके पूर्ण करना चाहिये, अर्थात् स्वयं आसक्ति रहित होकर और वे कर्म भगवान् के हैं ऐसा दृढ़ निश्चय करके, उन कर्मों को करना चाहिये। अस्तु, हे अर्जुन, तू जो कुछ करता है, जो कुछ खाता है, जो कुछ हवन करता है, जो कुछ देता है, जो कुछ तप करता है वह सब मेरे अर्पण कर।[1]

इस प्रकार जो भक्त समस्त शुभ और अशुभ कर्म अर्थात् सत्वगुणी कर्म (यज्ञ, पूजन, भजन आदि) जिन्हें शुभ कर्म कहते हैं और रजोगुणी कर्म (अहंकार से युक्त गृहस्थी के कार्य जो बन्धन कारक हैं) जिन्हें अशुभ कर्म कहते हैं, दोनों को ही भगवान् के निमित्त करने लगता है, वह निस्सन्देह आसक्ति रहित हो जाता है। परिणामस्वरूप कर्म-बन्धन से मुक्त हो जाता है और वह मुझे प्राप्त हो जावेगा, यानी मेरे सदृश आचरण करने लगेगा। अस्तु, आसक्ति से रहित होकर, यानी संन्यास योग से युक्त होकर तू शुभ एवं अशुभ फल देने वाले कर्म-बन्धनों से मुक्त हो जावेगा और इस प्रकार

---

१. यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।।२७।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मुक्त हुआ तू तुझको प्राप्त होगा।[1]

चूँकि कर्म-बन्धन से मुक्त होना ही वैष्णवीशक्ति के भाव को प्राप्त होना है, अतः वह वैष्णवीशक्ति के भाव को प्राप्त हो जाता है। यद्यपि यह सत्य है कि वैष्णवीशक्ति सब जीवों में समान भाव से स्थित होकर उनका भरण पोषण कर रही है; उसको न कोई प्यारा है और न वह किसी से द्वेष करती है, परन्तु जो भक्त-जन प्रेम से वैष्णवी शक्ति के भाव का दैनिक जीवन में प्रयोग करते हैं वे वैष्णवी शक्ति में स्थित हैं और वैष्णवीशक्ति उनमें है, यह तथ्य उन्हें प्रत्यक्ष अनुभव में आने लगता है। सत्य ही, मैं सब प्राणियों में समभाव से स्थित हूँ। न कोई मेरा प्यारा है और न मुझे किसी से द्वेष है। परन्तु, जो मुझे भक्ति-भाव से भजते हैं, वे मुझ में हैं और मैं भी उनमें हूँ।[2]

देखो अर्जुन, अब तू यह भी स्पष्ट समझले कि वस्तुतः, कौन व्यक्ति मेरी, यानी वैष्णवीशक्ति की उपासना के अधिकारी होते हैं।

वैष्णवीशक्ति की उपासना के अधिकारी व्यक्ति

निस्सन्देह, प्रत्येक व्यक्ति यदि चाहे तो वैष्णवीशक्ति का भक्त बड़ी सरलता से बन सकता है। वैष्णवीशक्ति के भक्त बनने के लिये कोई लम्बी चौड़ी साधना नहीं करनी पड़ती। केवल विचारधारा में परिवर्तन लाने की आवश्यकता है। प्रत्येक व्यक्ति को अपना काम करते समय यही विचार होता है कि वह अपना ही काम कर रहा है अतः वह व्यक्ति अपना ही भक्त है, ऐसा कहा जा सकता है। इसी प्रकार यदि व्यक्ति अपने काम को वैष्णवीशक्ति का काम समझना आरम्भ कर देता है और काम करते समय भी यदि विचार रखता है कि वह वैष्णवीशक्ति का ही काम कर रहा है और किसी अन्य का काम नहीं कर रह है, तो ऐसी स्थिति में वह व्यक्ति वैष्णवीशक्ति का ही भक्त है, ऐसा कहा जावेगा। चूँकि ऐसे भक्त में कर्त्तापन (अहंभाव) का अभाव रहता है, अतः

---

१. शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि।।२८।।

२. समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्।।२९।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वह व्यक्ति साधु कहलाता है क्योंकि, अहंभाव रहित होकर काम करने वाले व्यक्ति को परोपकारी अथवा साधुवृत्ति का व्यक्ति कहते हैं। अस्तु, यदि कोई व्यक्ति जो अभी तक अत्यन्त ही दुष्चरित्र रहा है, यदि वह भी अब अनन्य भाव से वैष्णवीशक्ति का उपासक अपने को समझकर ईश्वरार्पण बुद्धि से वैष्णवीशक्ति का भजन करने लगता है, अर्थात् उसके निमित्त काम करने लगता है, तो उसे वैष्णवीशक्ति का ही भक्त समझना चाहिये। वह अब साधु ही मानने योग्य हो गया है। क्योंकि उसने भली प्रकार आचरण करने का यानी अहंभाव रहित होकर भगवान् के निमित्त कर्म करने का निश्चय कर लिया है।[1]

वस्तुतः उसका निश्चय यथार्थ है। क्योंकि, उसका यह निश्चय उसके लिये आगे चलकर कल्याणकारी एवं औरों को अनुकरणीय सिद्ध होगा। ऐसे निश्चयवाला व्यक्ति शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है अर्थात् वह धर्म (मानव से अपेक्षित कर्म) करने लगता है। उसे स्थायी अर्थात् सदा रहने वाली शांति अनुभव होने लगती है। क्योंकि, प्रायः यही अनुभव में आता है कि अपनेपन के कारण कर्म के प्रतिकूल परिणाम निकलने पर ही अशान्ति आती है। चूँकि इस व्यक्ति में अपनापन नहीं है, अतः विपरीत परिणाम का उस पर कोई प्रभाव नहीं होगा। अस्तु, वह सदा ही शांति का अनुभव करेगा। निश्चय ही, हे अर्जुन, तू यह सत्य जान कि मेरा यानी वैष्णवीशक्ति का भक्त अपने लक्ष्य से नष्ट नहीं होता।[2]

वस्तुतः अहंभाव-रहित कर्म करने वाले वैष्णवी शक्ति के भक्त को कभी भी अशांति नहीं अनुभव होती। इतना ही नहीं यदि स्त्रियाँ जो गृहस्थी के कार्य में ही निरन्तर लगी रहती हैं, अथवा वैश्यवृत्ति को अपनाने वाले वैश्य लोग जो व्यापार में अधिक रत रहने के कारण भगवान् के भजन, पूजन तक का अवकाश नहीं निकाल पाते अथवा जो लोग स्वतंत्र व्यापार नहीं करते बल्कि

---

१. अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः।।३०।।

२. क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति।।३१।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दूसरे व्यक्तियों की नौकरी आदि करते हैं, अथवा दैनिक ही दूसरों के यहाँ जाकर शारीरिक श्रम द्वारा धन उपार्जन कर जीवन-निर्वाह करते हैं, इस प्रकार जो अपनी बुद्धि की अपेक्षा पराई बुद्धि पर निर्भर रहने वाले यानी शूद्र-वृत्ति अपनाने वाले हैं अथवा पाप कर्म यानी चोरी, ठगी, डकैती आदि के करने वाले लोग जो अभी तक अपना जीवन पाप-वृत्ति से निर्वाह करते रहे हैं, वे सब लोग भी यदि वैष्णवीशक्ति की शरण ग्रहण कर लेते हैं, अर्थात् वैष्णवीशक्ति के भक्त की भाँति ही अपने क्षेत्र में सदाचारयुक्त जीवन से अपना एवं अपने परिवार का पालन-पोषण करने लगते हैं तो उनकी भी सद्गति हो जावेगी और वे भी शाश्वत शाँति का अनुभव कर सकते हैं।[1]

जब इतने निम्न स्तर के जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्ति भी परमगति को प्राप्त कर शाश्वत शांति को प्राप्त हो जाते हैं तो वे ब्राह्मण लोग जो सद्धर्म का आचरण करने वाले ही माने जाते हैं और जिनका दैनिक कार्यक्रम ही भगवान् के निमित्त कर्म करते हुए सत्संग, भजन, पूजन, भगवत्कथावाचन आदि है अथवा राजर्षि जो जनता के हित के लिये ही राज्यों का संचालन कर रहे हैं, साथ ही स्वयं की दैनिक दिनचर्या ऋषियों के सदृश ही पालन कर रहे हैं, ऐसे भक्तजनों के सम्बन्ध में तो शंका के लिये कोई स्थान ही नहीं है। उनको तो परमगति की प्राप्ति अवश्यभावी है अर्थात् उनको शाश्वत शांति मिलना ही चाहिए। अस्तु, हे अर्जुन, तू इस स्थूल शरीर पर आसक्त मत हो। यह स्थूल शरीर क्षणभंगुर है एवं वास्तविक सुख से रहित है। अतः इस मनुष्य शरीर को प्राप्त होकर मेरा ही भजन कर, यानी मेरे लिये ही कर्म कर।[2]

सत्य ही, मेरे लिये कर्म करने का भाव वैष्णवीशक्ति के लिये ही कर्म करना है। अतएव, इस शरीर के सभी अवयवों का उपयोग वैष्णवीशक्ति के लिये ही कर। इस प्रकार वैष्णवीशक्ति का ही भजन कर, अर्थात् उसके लिये ही कर्म कर। शरीर के नाम और रूप मिट

---

१. मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्।।३२।।

२. किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्।।३३।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जाने की चिन्ता न कर। क्योंकि शरीर का नाम और रूप का मिट जाना तो उसका नैसर्गिक गुण है। जब शरीर का नाम व रूप रह ही नहीं सकता तब उसका परिवर्तन होना ही चाहिये। अतः जितना भी हो अधिक से अधिक शरीर का उपयोग करना चाहिये। शरीर की शक्ति को देखते हुए उसे भरसक स्वस्थ रखकर जिस वैष्णवीशक्ति के उपयोग के निमित्त वह है, उसी वैष्णवीशक्ति के निमित्त उसे निरन्तर लगाकर वैष्णवीशक्ति की उपासना कर। हाँ वैष्णवीशक्ति के निमित्त शरीर का सदुपयोग कैसे करना चाहिये इस तथ्य को भी अब तू अच्छी तरह समझ ले।

वैष्णवीशक्ति के निमित्त शरीर के सदुपयोग की रीति

देखो अर्जुन, वैष्णवीशक्ति के निमित्त शरीर के सदुपयोग करने की रीति वैसी ही होती है जैसी कि एक आस्तिक सद्गृहस्थ ही अपने गृह में स्थापित इष्टदेव की पूजा की, अथवा उसकी वह रीति जिसके अनुसार वह अपने कुटुम्ब के संचालन का कार्य करता है। तू इस तथ्य से परिचित है ही कि प्रायः एक आस्तिक सद्गृहस्थ अपने निवासगृह में ही अपने इष्ट देव की पूजा अर्चना के लिये एक छोटा सा मन्दिर पृथक् से बना लेता है। वह नित्य ही उनकी सेवा सुश्रूषा हेतु संकल्प करता है। अपने अर्जित द्रव्य में से उनकी सेवा में दैनिक ही कुछ न कुछ भोग, आरती आदि में व्यय करता है। अपने अर्जित धन से ही क्रय करके लाये हुए प्रसाद को भगवान् को भोग लगाने के उपरान्त पूजा समाप्ति पर कुटुम्बियों एवं अपने स्नेहियों में उस प्रसाद को बाँट देता है और सबसे अन्त में उनको श्रद्धा से प्रणाम करके गृहकार्य में लग जाता है। इस प्रकार उस आस्तिक सद्गृहस्थ को उसके इष्ट के निमित्त कर्म करने वाला भक्त कहते हैं। इसी विधि से अब उस आस्तिक सद्गृहस्थ के जीवन के अन्य विविध पहलुओं पर भी तू विचार कर। वह आस्तिक सद्गृहस्थ अपने इष्ट की पूजा आदि के अतिरिक्त अपने परिवार का उत्तम रीति से भरण-पोषण करने के लिये दैनिक ही अपने मन में विविध योजनाऐं बनाता है। योजनानुसार द्रव्य अर्जित करता है। उपार्जित द्रव्य में से कुछ अंश को दरिद्री, अपंग, अनाथों की आवश्यकता पूर्ति में व्यय करता है और उनका आशीर्वाद प्राप्त करता है। कुछ अंश को विशेष परिस्थिति के लिये अथवा अपनी सन्तानों के विवाहादि जैसे

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आवश्यक कार्यों के लिये बैंक में जमा कर देता है। शेष अंश से परिवार का दैनिक व्यय चलाता है। बच्चों की शिक्षा का उचित प्रबन्ध करता है। इस प्रकार वह परिवार के विविध कार्यों में व्यस्त रहता है। शयन के पूर्व पुनः वह सज्जन अपने इष्ट देव की आरती आदि करता है और अन्त में उन्हें प्रणाम करके दूसरे दिन किये जाने वाले कार्यों का चिन्तन करता हुआ शयन करता है। इस प्रकार इस सद्गृहस्थ को यदि इसके परिवार का भक्त कहा जाय तो अनुचित नहीं। अब, यदि इस आस्तिक सज्जन के जीवन पर तू किंचित् विचार करे तो तुझे चार बातें स्पष्ट अनुभव होंगी। पहिली तो यह है कि जिस परिवार के प्रति वह उत्तरदायी है उस परिवार की कुशल क्षेम के निमित्त वह मन में योजना बनाता है दूसरी बात यह है कि वह अपने परिवार का भक्त है और उसके प्रति अपनी भक्ति प्रकट करने के लिये, उसकी सेवा के हेतु उद्योग आदि से द्रव्य उपार्जन करता है। तीसरी बात यह है कि अपने अर्जित द्रव्य की उचित मात्रा को वह इष्टदेव की पूजा में और परिवार के संचालन में, अर्थात् परिवार की पूजा में व्यय करता है। एक दृष्टि से परिवार के व्यक्तियों को भोजन, वस्त्र आदि देना, वस्तुतः, हे अर्जुन, इष्टदेव की सेवा सुश्रूषा सदृश ही तो है। चौथी बात यह है कि शयन से पूर्व अपने इष्टदेव को प्रणाम करता है साथ ही, दिनभर के कार्यों को भी अंतिम नमस्कार करता है, अर्थात् कामों का अन्त करता है। इन्हीं चारों बातों को तू संक्षेप में इस प्रकार कह सकता है कि जो व्यक्ति जिस किसी के प्रति भक्ति करना चाहता है उसे उसके निमित्त कर्म करने हेतु मन में योजना बनानी चाहिये; उसकी भक्ति प्रदर्शित करने हेतु, यानी आवश्यकता की पूर्ति के हेतु उद्योगादि से द्रव्य उपार्जन करना चाहिये; उस अर्जित द्रव्य को उसी के हित में व्यय करना चाहिये, अर्थात् उस द्रव्य से उसका पूजन करना चाहिये और अन्त में उसे ही नमस्कार करके उसी के निमित्त कर्म करने के लिये आगे का विचार करते हुए विश्राम करना चाहिये। ठीक यही ढंग वैष्णवी-शक्ति के भक्त होने का है। केवल अन्तर इतना ही है कि जैसे आस्तिक सद्गृहस्थ अपने कुटुम्ब के निमित्त काम करता है, वैसे ही वैष्णवीशक्ति का भक्त स्वयं को व अपने परिवार को वैष्णवी-शक्ति की शरण में समझ कर उसके निमित्त कर्त्तव्य-पालन करता है। अतः संक्षेप में तू यूँ समझ कि अपने समस्त उचित कार्यों को जिन्हें भी तुझे स्वधर्म पालन करने के निमित्त करना पड़े उन्हें तू

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यही समझ कि तू वैष्णवीशक्ति के लिये कर रहा है। अतएव, वैष्णवीशक्ति के कार्यों को करने के लिये तू मन लगा, अर्थात् योजना बना। वैष्णवीशक्ति के लिये ही योजनानुसार उद्योग कर, अर्थात् वैष्णवीशक्ति का ही भक्त बन। वैष्णवीशक्ति की ही पूजा कर, अर्थात् वैष्णवीशक्ति के निमित्त ही उद्योग द्वारा उपार्जित द्रव्य का व्यय कर अथवा अपनी शक्ति का उपयोग कर। कर्म की पूर्णता के अन्त में वैष्णवीशक्ति को ही नमस्कार कर और आगे का कार्य प्रारम्भ कर। इस प्रकार से तू वैष्णवीशक्ति के ही यानी मेरे ही पूर्णतः शरणागत होकर वैष्णवीशक्ति को यानी मुझको ही प्राप्त हो जावेगा। अस्तु, तू मुझमें ही मन लगा, मेरा ही भक्त बन, मेरी ही पूजा कर, मुझे ही नमस्कार कर। इस प्रकार मन से मेरी शरण में पूर्णतः रह कर तू मेरे को ही प्राप्त हो जावेगा।[1]

ऊँ शम्

---

१. मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः।।३४।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ॐ

दसवाँ अध्याय

विभूतियोग

अर्थात्

वैष्णवीशक्ति के उपासक को चिन्तन करने योग्य भगवान् के विशिष्ट भावों से परिचित कराने का प्रकरण।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विभूतियोग

एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः।
सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः।।७।।

जो साधक इस मेरे विस्तार को, अर्थात् सृष्टि की विस्तृत वैभवपूर्ण रचना को जानता है और साथ ही यह भी जानता है कि उस सृष्टि में मेरा, यानी परमात्म-तत्व का योग कैसे हो रहा है, अर्थात् परमात्म-तत्व का किस प्रकार से प्रकृति में समावेश है, वह साधक डांवाडोल चित्त का नहीं हो सकता, यानी उस व्यक्ति का चित्त चलायमान नहीं होता। परिणामतः वह योगाभ्यास के सर्वथा योग्य है, अर्थात् वह परमात्म-तत्व में अपने चित्त को स्थिर कर लोक-हित के कार्य करने में समर्थ है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है।।७।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

१०

नवे अध्याय में आत्म-तत्व के स्वरूप का विस्तारपूर्वक विवरण, उसकी उपासना की सरल विधि एवं ईश्वरार्पण बुद्धि से कर्म करने वाला निष्काम कर्मयोगी, कैसे वैष्णवीशक्ति के भाव को प्राप्त होकर परमात्म-तत्व के भाव को प्राप्त हो सकता है, पाठक पढ़ चुके हैं। अब दसवे अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं ही यह स्पष्ट करने की कृपा करेंगे कि वैष्णवीशक्ति का उपासक वैष्णवी सत्ता के आधार से समस्त जगत की स्थिति के तत्व को भली प्रकार जान कर वैष्णवीसत्ता में ही कैसे एकीभाव से स्थित हो जाता है। साथ ही, अर्जुन के पूछने पर भगवान् यह भी विस्तार-पूर्वक वर्णन करेंगे कि वैष्णवीशक्ति के विशिष्ट भावों को कैसे जाना जा सकता है, जिससे कि साधक को समस्त जगत में व्याप्त वैष्णवीशक्ति का पूर्ण भाव शीघ्र समझ में आ जावे। अस्तु, अब मैं पहिले तुझे यह समझाता हूँ कि त्रिगुणात्मक शक्ति का आदि कारण परमात्म-तत्व कैसे है।

त्रिगुणात्मक शक्ति का आदि कारण परमात्म-तत्व

हे महाबाहो अर्जुन, तू मुझ पर अतिशय प्रेम रखता है, अतः, तेरे कल्याण के लिये मैं तुझसे पुनः अपने श्रेष्ठ रहस्य को कहूँगा, तू श्रवण कर।' सम्पूर्ण जगत के सहित अखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त त्रिगुणात्मक शक्ति कैसे उत्पन्न हुई इस रहस्य को न तो देवता लोग यानी ऐश्वर्यवान और सब प्रकार के साधनों से सम्पन्न व्यक्ति और न संयमी जीवन व्यतीत करने वाले बड़े-बड़े महर्षिगण ही जानते हैं। क्योंकि, अखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त समष्टि रूप में त्रिगुणात्मक शक्ति से ही देवताओं व महर्षियों की उत्पत्ति हुई है। अतः, देवताओं व महर्षियों का भी जो सब प्रकार से आदि कारण है, अर्थात् देवताओं व महर्षियों को सृजन करने वाली शक्ति

---

१. श्री भगवानुवाचः भूय एव महाबाहो श्रृणु मे परमं वचः।
यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया।।१।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

है, उसकी उत्पत्ति को देवता व महर्षि ठीक इसी प्रकार नहीं जान सकते जिस प्रकार की पुत्र अपने पिता की उत्पत्ति के विषय में कुछ नहीं कह सकता। क्योंकि, पिता की उत्पत्ति के समय पुत्र का जन्म ही नहीं हुआ था। इसी प्रकार से चूँकि देवताओं व महर्षियों का भी अस्तित्व समष्टि रूप में त्रिगुणात्मक शक्ति की उत्पत्ति के समय नहीं था, अतः वे लोग भी त्रिगुणात्मक शक्ति की उत्पत्ति के विषय में कुछ भी जानकारी नहीं दे सकते। चूँकि त्रिगुणात्मक शक्ति को मूल रूप में स्पन्दन करने वाली परमात्म-तत्व की सत्ता है, अतः, अजन्मा और अविनाशी परमात्म-तत्व की सत्ता ही वस्तुतः सब प्रकार से समस्त सृष्टि की उत्पादक त्रिगुणात्मक शक्ति का आदि कारण है। अस्तु, मैं देवताओं तथा महर्षियों का सब प्रकार से आदि कारण हूँ। अतः, वे मेरे प्रभाव को, यानी नाम, रूप और स्वरूप को नहीं जानते।[1] अब, तू यह भी जान ले कि तत्वदर्शी ज्ञानवान् पुरुष की पापों से मुक्ति कैसे होती है।

तत्वदर्शी ज्ञानवान् व्यक्ति की पापों से मुक्ति

चूँकि परमात्म-तत्व के भाव में स्थित रहकर ही मैं वैष्णवी धर्म का पालन करता हूँ, अतः मैं नित्य परमात्म-भाव में ही रहता हूँ। चूँकि परमात्म-तत्व विभिन्न भागों में विभक्त नहीं है, वह तो अखण्ड इकाई है, अतः जब तुझसे वार्तालाप करते समय "मैं" "मेरा" आदि उत्तम पुरुष एक वचन को मैं प्रयोग में लाता हूँ तब वास्तव में "मैं" "मेरा" आदि शब्दों से मेरा अभिप्राय परमात्म-तत्व को ही बोध कराने का है। अस्तु, जो मेरे को (परमात्मतत्व को) जन्म रहित, सबकी उत्पत्ति का कारण (जिससे पूर्व और कोई न हो अर्थात् अनादि), सब जीवों का (सृष्टि का) ईश्वर, तत्व से जानता है, वह यह जानता है कि वास्तव में, है तो सृष्टि का कारण त्रिगुणात्मक शक्ति, किन्तु, त्रिगुणात्मक शक्ति को स्फुरण देने वाली शक्ति है, परमात्म-तत्व। अतः इस दृष्टिकोण से अजन्मा, अनादि परमात्म-तत्व को सृष्टि का ईश्वर कहा जाता है। वस्तुतः परमात्म-तत्व कर्त्तापन से सर्वथा रहित है। अस्तु, विवेचन से तुझे स्पष्ट हो गया होगा कि सृष्टि का

---

१. न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः।।२।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आदि कारण परमात्म-तत्व को कर्त्तापन से रहित जो जानता है, वह व्यक्ति यदि अपने को आत्म-स्वरूप में स्थित करके देखता है तो वह अपने आपको भी कर्त्तापन से मुक्त अनुभव करता है और त्रिगुणात्मक शक्ति को कर्त्ता मानता है। जब एक व्यक्ति त्रिगुणात्मक शक्ति के अधिकार का अपहरण करता है तब ही वह व्यक्ति अपने को कर्म का कर्त्ता कह सकता है। चूँकि दूसरे के अधिकार का अपहरण करना पाप है अतः वह व्यक्ति जो त्रिगुणात्मक शक्ति के स्थान पर अपने को कर्म का कर्त्ता कहता है, वह पापी है। अस्तु, जो मनुष्यों में ज्ञानवान पुरुष है वह परमात्म-तत्व को अजन्मा, अनादि सब लोकों का महेश्वर तत्व से जानता है। भाव यह है कि वह परमात्म-तत्व में कर्तृत्व-भावना नहीं देखता, यानी परमात्म-तत्व पर कर्तृत्व-भावना का मिथ्यारोप नहीं करता। साथ ही, स्वयं भी कर्तृत्व-भावना से मुक्त रहता है। ऐसा तत्वदर्शी ज्ञानवान पुरुष सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है।[1] अब मैं तुझे नाना प्रकार के भावों में चित्त के चलायमान न होने की विधि को अच्छी तरह से समझाता हूँ। तू ध्यान से श्रवण कर।

नाना प्रकार के भावों में चित्त के चलायमान न होने की विधि

यद्यपि सृष्टि की उत्पत्ति वस्तुतः होती तो त्रिगुणात्मक शक्ति से ही है किन्तु, त्रिगुणात्मक शक्ति का प्रेरक परमात्म-तत्व होता है। अतः परमात्म-तत्व को ही सृष्टि रचना का आदि कारण कहते हैं। इसी प्रकार से सृष्टि के जीवों के नाना प्रकार के भावों को भी आदि कारण मुझको अर्थात् परमात्म-तत्व को समझना चाहिये। अतएव, प्राणियों के नाना प्रकार के भाव जैसे उनकी बुद्धि, यानी संकल्पों को पूर्ण करने का निर्णय देने वाली शक्ति ज्ञान, यानी स्थूल, सूक्ष्म और आत्म-तत्व की पृथक्-पृथक् पहिचान कराने वाली शक्ति, असंमोह, यानी पदार्थ का यथार्थ स्वरूप जान लेने पर फिर भ्रम में न डालने की शक्ति जैसे असली मोती की पहिचान होने पर नकली मोती को असली सा लगने पर भी असली के भ्रम में न पड़ने वाली शक्तिः, क्षमा, यानी सामर्थ्य होते हुए भी अपकारी से बदला न लेने की भावना; सत्यम्, यानी कथन उपकथन में परिवर्तन न करने की शक्ति; दम यानी बाह्य इन्द्रियों को नियंत्रण में रखने की शक्ति; शम, यानी

---

१. यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्।
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते।।३।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अन्तःकरण को शान्त रखने की शक्ति; सुखम् यानी अनुकूल स्थिति में हर्ष अनुभव करने की शक्ति; दुखम् यानी प्रतिकूल स्थिति में मानसिक सन्ताप अनुभव करने की शक्ति; भवः यानी श्रेष्ठ-पन के वैभव को अनुभव करने की शक्ति; अभावः यानी कमी अनुभव करने की शक्ति; भयम् यानी अनिष्ट की संभावना से दुःख अनुभव करने का भाव, अभयम् यानी अनिष्ट की निवृत्ति की संभावना से स्वस्थ अनुभव होने का भाव; अहिंसा यानी कम से कम आवश्यकता की पूर्ति होने पर प्रसन्नता अनुभव करने की वृत्ति; तप, यानी स्वधर्म-पालन करने में अधिक श्रम करने का भाव; दानम् यानी श्रम से उपार्जित द्रव्य आदि को आश्रित अथवा अधिकारियों में व्यय करने का भाव; यश यानी जनहित के लाभार्थ किये गये सफल कर्मों की चर्चा के भाव, अयश यानी जन साधारण को हानि पहुंचाने वाले कर्मों में प्रवृत्त होने के भाव आदि के होने के कारण मैं ही हूँ, अर्थात् समस्त जीवों के नाना प्रकार के भाव जैसे बुद्धि, ज्ञान, असंमोह, क्षमा, सत्य, दम, शम, सुखः, भव अभाव, भय, अभय, अहिंसा, समता, तुष्टि, तप, दान, यश, अयश, आदि सब भाव परमात्म-तत्व की सत्ता से ही प्रकट होते हैं, यानी मेरे से ही व्यक्त होते हैं।[१]

इतना ही नहीं वरन् जैसे मैं अखिल त्रिगुणात्मक शक्ति से वैष्णवी धर्म का पालन करने हेतु मानव रूप से प्रकट हुआ हूँ, उसी प्रकार से संसार के कल्याणार्थ अत्यन्त प्राचीनकाल में वैष्णवीशक्ति के संकल्प को लिये हुए ही, अर्थात् मेरे जैसे ही भाव वाले सात महर्षिगण तथा उनसे पहले के चार एवं मनु आदि उत्पन्न हुए थे, जिनकी कि इस संसार में यह सम्पूर्ण प्रजा फैली हुई है।[२] भाव यह है कि जो भी सम्पूर्ण सृष्टि के कल्याण करने वाले हुए हैं वे

---

१. बुद्धिर्ज्ञानमसंमोहः क्षमा सत्यं दमः शमः।
सुखं दुःखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च।।४।।
अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः।
भवन्ति भावा भूतानां मत्त एवं पृथग्विधाः।।५।।

२. महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा।
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः।।६।

सब मेरे ही जैसे संकल्पों को लेकर उत्पन्न हुए हैं।*

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अस्तु, जो साधक इस मेरे विस्तार को, अर्थात् सृष्टि की विस्तृत वैभवपूर्ण रचना को जानता है; और साथ ही यह भी जानता है कि उस सृष्टि में मेरा यानी परमात्म-तत्व का योग कैसे हो रहा है अर्थात् परमात्म-तत्व का किस प्रकार से प्रकृति में समावेश है, वह साधक डांवाडोल चित्त का नहीं हो सकता, यानी उस व्यक्ति का चित्त चलायमान नहीं होता। परिणामतः वह योगाभ्यास के सर्वथा योग्य है, अर्थात् वह परमात्म-तत्व में अपने चित्त को स्थिर कर लोक-हित के कार्य करने में समर्थ है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।१

यही कारण है कि बुद्धिमान, तत्वज्ञानी लोग इस रहस्य को तत्व से समझ लेते हैं कि परमात्म-तत्व तो प्रेरक है; और वही त्रिगुणात्मक शक्ति द्वारा की जाने वाली सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति एवं

---

*महाभारत शांति-पर्व के नारायणीयोपाख्यानुसार मरीचि अङ्गिरस, (भृगु), अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वशिष्ठ ये सात महर्षिगण हैं। मरीचि आदि महर्षियों के पहले वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध ये चार मूर्तियाँ ही चतुर्व्यूह है जो परमेश्वर के मानस पुत्र हैं। इनमें से पिछले अनिरुद्ध से या ब्रह्मदेव से मरीचि आदि सप्तर्षि उत्पन्न हुए।

मनु आदि से अभिप्राय सात मनु यानी स्वायम्भुव, स्वारोचिष, औत्तामी, तामस, रैवत, चाक्षुष और वैवस्वत से है। कहा जाता है कि ब्रह्मा का एक कल्प है और एक कल्प में चौदह मन्वन्तर होते हैं। प्रत्येक मन्वन्तर के देवता व सप्तर्षि भिन्न-भिन्न होते हैं। वर्तमान मन्वन्तर वैवस्वत है। कुल चौदह मन्वन्तर के चौदह मनु हैं। इनमें सात-सात के दो वर्ग हैं। प्रथम सात के नाम हैं - स्वायम्भुव, स्वारोचिष, औत्तमी, तामस, रैवत, चाक्षुष और वैवस्वत्। इनमें छैः हो चुके, सातवाँ चल रहा है। इसी मन्वन्तर में गीता कही गई है। इसके समाप्त होने पर आगे जो मनु होंगे उनको सावर्णिमनु कहते हैं। उनके नाम हैं - सावर्णि, दक्षसावर्णि, ब्रह्मसावणि, धर्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, देवसावर्णि और इन्द्रसावर्णि।

---

१. एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः।
सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः।।७।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उसके विस्तार का आदि कारण है। अतः वे भावपूर्वक अर्थात् अत्यन्त तल्लीनता से मुझको ही भजते हैं, यानी परमात्म-तत्व में स्थिर रह कर लोक-हित करते हैं।१ अस्तु, वे परमात्म-तत्व में ही चित्त लगाने का अभ्यास करते हैं। परमात्म-तत्व में स्थिर रह कर लोकहित कर्म करना ही उनके जीवन का एक मात्र आधार होता है। इतना ही नहीं वरन् वे, जो मेरे में निरन्तर मन लगाने वाले हैं, मेरे लिये ही जिन्होंने प्राणों को अर्पण कर दिया हे, यानी मेरे लिये ही जिनका जीवन है, जब कभी अपने जैसे ही तत्व-ज्ञानियों के अथवा अपने मिलने वाले अन्य व्यक्तियों के परस्पर सम्पर्क में आते हैं तब वे परमात्म-तत्व की श्रेष्ठता के आधार को लक्ष्य में रख कर ही वार्तालाप करते हैं तथा इच्छुक भक्तों को समझाते भी रहते हैं। इस प्रकार परमात्म-तत्व को लक्ष्य में रखकर कार्य करने में उन्हे अत्यन्त सन्तोष होता है। अतः वे अपने समस्त जीवनकाल में नित्य ही ऐसा ही आचरण करते रहते हैं।

देखो अर्जुन, अब मैं तुझे यह भी समझाये देता हूँ कि तत्व-ज्ञानीयोगी के इस प्रकार के आचरण का क्या परिणाम होता है। तू ध्यानपूर्वक श्रवण कर।

परमात्म-तत्व में लीन तत्व-ज्ञानी योगी के आचरण का परिणाम

जो तत्वज्ञानी योगीजन निरन्तर परमात्म-तत्व का ध्यान करते हैं और प्रेमपूर्वक भजन करते है, अर्थात् भगवान् में चित्त लगाये हुए अत्यन्त प्रेम से निरन्तर लोक-हित के कर्म करने का अभ्यास करते रहते हैं, उन तत्वज्ञानियों को मैं उस 'बुद्धि योग' को प्रदान करता हूँ जिससे वे मेरे को यानी परमात्म-तत्व को प्राप्त होते हैं। भाव यह है कि परमात्म-तत्व में नित्य लीन रहने का परिणाम यह होता है कि उनकी बुद्धि पर मन को आदेश देने के ऐसे संस्कार अचल हो जाते हैं जिससे कि मन सदैव परमात्म-तत्व के हेतु कर्म करने को लालायित होता रहे। परिणामतः

---

१. अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः।।८।।

२. मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च।।९।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कर्म के प्रारम्भ होने से पूर्व ही उनको बुद्धि में, बिना प्रयास के ही परमात्म-तत्व का स्फुरण होने लगता है, जिससे मन के द्वारा इन्द्रियों से कर्म करते हुए भी परमात्म-तत्व का भाव विस्मरण नहीं होता। अतः बिना प्रयास के ही परमात्म-तत्व में चित्त लगाये हुए मन से कर्म करने की योग्यता प्राप्त हो जाने को तू 'बुद्धियोग प्राप्त करना' समझ। सत्य ही, वे तत्व-ज्ञानी जिन्हें 'बुद्धियोग' प्राप्त हो जाता है वे जीवनकाल में ही परमात्म-तत्व को यानी मुझको प्राप्त कर लेते हैं।[१]

जिस प्रकार कि प्रकाश के अभाव में अन्धकार छाया रहता है, किन्तु दीपक के प्रज्वलित होते ही दीपक के प्रकाश से अन्धकार तत्काल दूर हो जाता है, उसी प्रकार से आत्म-तत्व के ज्ञान के प्रकाश के अभाव में अन्तःकरण में 'मेरे, तेरे' के भाव की प्रबलता का अज्ञान अंधकार भरा रहता है, जिससे प्राणी का मन सदा अशान्ति के अन्धकार में भटकता रहता है, किन्तु जैसे ही परमात्म-तत्व के ज्ञान रूपी दीपक के प्रकाश को प्राणी अनुभव करता है, वैसे ही 'मेरे, 'तेरे' की भावना से उत्पन्न हुआ, अन्तःकरण में अज्ञान अंधकार तत्काल दूर हो जाता है और प्राणी में समता का भाव आने लगता है जिससे वह शांति का अनुभव करता है। इस प्रकार मैं स्वयं ही कृपा करके अपने भक्तों के अन्तःकरण में अज्ञान से उत्पन्न हुए अन्धकार को तत्व-ज्ञान रूप प्रकाशमय दीपक द्वारा नष्ट कर देता हूँ।[२]

वस्तुतः परमात्म-तत्व रूपी प्रकाश, जो भक्त की स्वयं की आत्मा ही है, की कृपा यानी सत्ता से वह अज्ञान-अंधकार जो लौकिक विषय भोग सम्बन्धी आसक्ति और 'मेरे, तेरे' के भाव से युक्त अंहकार के कारण उत्पन्न हो जाता है, वह सब दूर हो जाता है, यानी तू यूँ समझ कि भगवान् के भक्तों की आत्म-स्वरूप में निष्ठा के कारण एवं निरन्तर आत्म-स्वरूप में चित्त को स्थित कर लोक-

---

१. तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।।१०।।

२. तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता।।११।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हित के लिये निष्काम कर्म के निरन्तर अभ्यास से अज्ञान अन्धकार स्वयमेव पूर्णतः नष्ट हो जाता है।*

हे भगवान्, आप परम ब्रह्म हैं, यानी अखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त शुद्ध आत्मतत्व हैं। आप परमधाम हैं, यानी समस्त प्राणियो के आश्रयदाता ज्योतिस्वरूप हैं। आप परम पवित्र हैं, यानी माया से रहित अत्यन्त ही पवित्र तीर्थों के भी तीर्थस्वरूप हैं। आप सनातन दिव्य पुरुष और देवताओं के भी आदि देव हैं। आप अज हैं और विभु हैं, यानी आप जन्म रहित हैं और सर्व व्यापी हैं।[१]

भगवान् की विभूति और योग का विस्तृत वर्णन पुनः श्रवण करने के लिये अर्जुन की प्रार्थना

इसी प्रकार से हे भगवन्, आपको ऋषिगण यानी यथार्थ तत्व के वेत्ता, देवताओं के ऋषि नारद जी, निकृष्ट तत्व के उपासक असित आदि, देवल यानी देवमन्दिर की चढ़ोतरी पर निर्वाह करने वाले निकृष्ट पुजारी आदि तथा व्यास यानी कथावाचक पण्डितजन आदि सब के सब छोटे से छोटे पुजारी से लेकर बड़े से बड़े ऋषि तक भी कहते हैं और हे भगवान्, आपने

जब अर्जुन को भगवान् का यह उपदेश कि "भगवान् की कृपा से ज्ञान रूपी दीपक का प्रकाश, अज्ञानजन्य अन्धकार का नाश कर देता है" स्मरण हो आया था तब उसे यह भी स्मरण हो आया कि उसने भगवान् से यह कहा था कि "हे भगवान्, आपके वैभव की एवं उन वैभवों में आपका किस प्रकार से योग है इस तथ्य की जानकारी आपके अतिरिक्त और किसी को नहीं है। यह जानकारी न तो कोई देव को है न किसी दानव को। क्योंकि सब के आदि कारण आप ही हैं। अतः आप स्वयं ही अपनी विभूतियों को बतलाकर मुझे अनुगृहीत करें।" उसकी इस प्रार्थना पर भगवान् ने कृपा करके अपनी विभूतियों का वर्णन किया था। अतः वेदव्यास जी अब भगवान् की विभूतियों का वर्णन स्वयं भगवान् के श्रीमुख से ही श्रवण करवाने के लिये अर्जुन से प्रार्थना करवा रहे हैं। अस्तु, अर्जुन भगवान् से प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि –

---

१. अर्जुन उवाचः परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम्।।१२।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भी स्वयं अपने श्रीमुख से मुझको इसी प्रकार अपना परिचय दिया है।[1] आपके द्वारा वर्णित आपके समस्त विशेषणों को मैं सत्य मानता हूँ। यह यथार्थ ही है कि हे भगवन्, आपके व्यक्तित्व को देव और दानव कोई भी नहीं जानता।[2]

हे समस्त प्राणियों की उत्पत्ति के कारण, सब के ईश्वर (नियन्ता), देवताओं के भी देव, जगत के स्वामी, पुरुषोत्तम भगवान् आपही स्वयं अपने आपको जानते हैं।[3] अतः हे भगवन्, आप ही अपनी उन पूर्ण दिव्य विभूतियों को यथार्थ रूप से कहने में समर्थ हैं, जिनके कि द्वारा समस्त जगत के प्राणिमात्र में व्याप्त होकर आप स्वयं भी स्थित हैं।[4]

हे योगेश्वर, कृपा करके कहिये कि किस प्रकार निरन्तर चिन्तन करता हुआ मैं आपको पहचानूँ। साथ ही मुझको आपके किन-किन भावों में आपका चिन्तन करना उचित है।[5] हे जनार्दन कृपा करके अपनी विभूति और योग का विस्तार से पुनः वर्णन कीजिये। क्योंकि आपके अमृत तुल्य वचन इतने रोचक हैं कि उनके सुनते-सुनते तृप्ति होती ही नहीं है।[6]*

---

१. आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा।
असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे।।१३।।

२. सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव।
न हि ते भगवन्व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः।।१४।।

३. स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम।
भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते।।१५।।

४. वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः।
याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि।।१६।।

५. कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिन्तयन्।
केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया।।१७।।

६. विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन।
भूयः कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम्।।१८।।

*अब वेदव्यासजी, अर्जुन की जिज्ञासा तृप्त कराने के लिये भगवान् स्वयं के ही श्रीमुख से उनकी विभूतियों को प्रधान-प्रधान रूप से वर्णन करा रहे हैं। अस्तु, भगवान् कहते हैं कि ....

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हे कुरुश्रेष्ठ अर्जुन, अब मैं अपनी दिव्य विभूतियों का वर्णन करता हूँ। किन्तु, तू यह ध्यान में रख कि केवल प्रधान-प्रधान विभूतियों का ही वर्णन मैं करूँगा। क्योंकि, यदि विस्तार से वर्णन करने लगूँ तो समस्त सृष्टि का इतना वृहत् रूप है कि तू उन्हे गिनते-गिनते ही थक जावेगा, फिर भी उनका अन्त नहीं आवेगा।[१]

भगवान् की प्रधान-प्रधान दिव्य विभूतियों का विस्तृत विवरण

वस्तुतः, विभूति का वास्तविक भाव परमात्म-शक्ति के उस ऐश्वर्य से है जिसको देख कर, सुन कर, या समझकर परमात्म-भाव की एक झलक अनुभव होने लगे। हाँ, अब मैं अपनी विभूति को "मैं, मेरा" आदि सम्बोधन करके ही कहूँगा जिससे तुझे समझने में सुविधा हो। अस्तु, हे अर्जुन, सब से पहले एक जीव का ही उदाहरण ले। जीव के तीन भाग स्पष्ट अनुभव में आते हैं- स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और आत्मा। स्थूल शरीर का नाम व रूप मिट जाने वाला होता है, सूक्ष्म शरीर अर्थात् मस्तिष्क के कोषों में स्थित विचारों के स्मृति-चिह्न सदैव परिवर्तनशील हैं, और आत्मा, स्थूल व सूक्ष्म शरीर का साक्षी है और अविनाशी है। यह अविनाशी आत्मा यद्यपि, प्रत्येक जीव के हृदय में स्फुरण होता रहता है किन्तु ज्ञानी को ही उसका स्पष्ट अनुभव होता है। यह जीव की आत्मा वस्तुतः परमात्मशक्ति का ही अविभाजित एक अंश है। अतः, हे गुडाकेश (निद्राविजयी) अर्जुन, सब भूतों के हृदय में स्थित सब का आत्मा मेरा ही रूप है, यानी आत्मा को मेरी विभूति समझ। अतएव, आत्मा के रूप में मेरा चिन्तन किया जा सकता है। चूँकि बिना आत्मा की सत्ता के उत्पत्ति, रक्षण अथवा संहार हो ही नहीं सकता, अतः प्रत्येक भूत का मैं ही आदि हूँ, मैं ही मध्य हूँ, और मैं ही अन्त हूँ, यानी भूतों को जन्म देना, उनकी वृद्धि करना और उनका अन्त कर देना, ये जो तीन कार्य हैं, इन तीनों में मानवशक्ति के अधिकार से परे का दिव्य भाव व्यक्त होता है। अतएव, भूतों का आदि, मध्य और अन्त मेरी ही विभूतियाँ हैं।

---

१. श्री भगवानुवाचः हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः।
प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे।।१६।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अस्तु, मैं ही सब भूतों का आदि, मध्य, एवं अन्त हूँ, ऐसा समझ कर मेरा अर्थात् भगवान् का चिन्तन किया जा सकता है।[1]

इसी प्रकार से यदि तू सृष्टि की समस्त वैभवपूर्ण शक्तियों का चिन्तन करना चाहे तो उन्हें भी भगवान् की सत्ता से स्थित समझ कर उनका चिन्तन कर सकता है।

सृष्टि की वैभवपूर्ण शक्तियों में ही तू विष्णु को समझ, जो कि अदितिं के बारह पुत्रों में सब से अधिक प्रतापी हैं। अतः विष्णु मेरा रूप है यानी सृष्टि को पालन करने वाली वैष्णवीशक्ति का रूप विष्णु मेरा ही रूप है। सृष्टि में जीवन संचार के हेतु प्रकाश देने वाला विशेषकर सूर्य है अतः प्रकाश करने वाली ज्योतियों में किरण-धारी सूर्य मेरा ही रूप है। वायु उनन्चास प्रकार की होती है उनमें जो श्रेष्ठ वायु का रूप है, वह मरीचि है। अतः मरीचिवायु मेरा रूप है। ऐसे ही नक्षत्रों में नक्षत्रराज चन्द्रमा, मेरा ही रूप है।[२] चारों वेदों में जो विशेष ध्वनि से गाया जा सकता है वह सामवेद है उसे तू मेरा ही रूप समझ। इसका तू यह अर्थ न समझ लेना कि और वेद महत्वपूर्ण नहीं। चूँकि सामवेद की ऋचाऐं संगीतमय होने से अधिक आकर्षक प्रतीत होती हैं, अतः, विशेष प्रभावित करने वाला होने से सामवेद मेरा ही रूप है यानी तू उसको मेरी विभूति कह सकता है। जीवन की रक्षा करने वाली समस्त दिव्य शक्तियों में इन्द्र (मेघ शक्ति) सर्वश्रेष्ठ है। अतः इन्द्र मेरा ही रूप है। ऐसे ही समस्त इन्द्रियों में सब से शक्तिशाली मन है, अतः मन को तू मेरा ही रूप समझ। इसी प्रकार सब जीवों में चेतना अर्थात् ज्ञानशक्ति अधिक शक्तिशाली है जिसके कि द्वारा जीवों के संकल्प कार्यरूप में परिणत होते हैं, अतः चेतना मेरा ही रूप है।[३]

सत्य ही, एकादश रुद्रों में जीवों के कल्याण करने वाले शंकर

---

१. अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च।।२०।।

२. आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान्।
मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी।।२१।।

३. वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः।
इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना।।२२।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के रूप में मैं ही हूँ। प्रायः यक्ष और राक्षस धन प्राप्त करने के बहुत ही इच्छुक होते हैं। अतः धनराशि का सब से बड़ा स्वामी जो कुबेर यक्ष है, वह मेरा ही रूप है। आठ प्रकार के वसुओं में अग्नि सर्वश्रेष्ठ है। अतः, अग्नि मेरा रूप है। ऐसे ही शिखरवाले पर्वतों में सुमेरु पर्वत सर्वश्रेष्ठ है। अतः सुमेरु के रूप में, मैं ही हूँ।[१]

हे पार्थ, पुरोहितों में देवताओं के पुरोहित बृहस्पति, प्रधान पुरोहित माने जाते हैं अतः बृहस्पति में मेरा ही रूप है। सेनापतियों की श्रेणी में स्वामिकार्तिक जी का सर्वाधिक सम्मान है। अतः स्वामिकार्तिक को तू मेरा ही रूप समझ। जलाशयों में सर्वश्रेष्ठ समुद्र है। अतः समुद्र मेरा ही रूप है।

महर्षियों में भृगु महाराज का सर्व प्रथम स्थान है। अतः भृगु में मेरा ही भाव समझना चाहिये। अर्थ-बोधक शब्दों में एक अक्षर वाला शब्द ओंकार (ॐ) है जिसके अन्तर्गत वर्णमाला के सभी अक्षरों का महत्व आ जाता है। बिना इस अक्षर को आरम्भ में लगाये किसी मंत्र का उच्चारण ही नहीं किया जाता। अतः विशेषीभाव वाला एकाक्षर शब्द ओंकार मेरा ही रूप है। यज्ञों में सभी यज्ञ 'जप' पर अवलम्बित हैं। अतएव, जप यज्ञ मेरा ही रूप है। सत्य ही, स्थिर रहने वालों में हिमालय पर्वत से और विशाल कोई पर्वत नहीं है। अतः हिमालय मेरा ही रूप है।[३]

सब वृक्षों में अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष जन-हित की दृष्टि सर्वोपयोगी है। इसकी जड़ से लेकर पत्तों तक की सभी वस्तुओं का औषधियों में प्रयोग होता है। जड़ के समीप की मिट्टी गीली करके रखने से स्त्रियों के प्रसव शीघ्र हो जाते हैं। अतः अत्यन्त उपयोगी होने से पीपल वृक्ष को तू मेरा ही रूप समझ। समस्त देवऋषियों में नारदजी की गणना प्रथम है, अतः नारदजी मेरे ही रूप है।

---

१. रुद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम्।
वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम्।।२३।।

२. पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम्।
सेनानीनामहं स्कन्दः सरसामस्मि सागरः।।२४।।

३. महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम्।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः।।२५।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गंधर्वो (देवगायकों) में सर्वाधिक मान्यता उनके राजा चित्ररथ की है। अतः गायकराज चित्ररथ के रूप में मैं ही हूँ। सिद्ध हुए श्रेष्ठ मुनियों में कपिल मुनि का स्थान प्रथम है अतः कपिल मुनि मेरे ही रूप हैं।[१]

यदि तू घोड़ों में मेरे रूप का चिन्तन करना चाहे तो अमृत मन्थन के समय उत्पन्न होने वाले उच्चैः-श्रवा घोड़े को देखकर मेरा चिन्तन कर सकता है। क्योंकि सब घोड़ों से अधिक विशेषता उच्चैः-श्रवा में है। ऐसे ही ऐरावत हाथी में और हाथियों की अपेक्षा अमृत मन्थन के समय उत्पन्न होने के कारण दिव्यता है। अतः ऐरावत को मेरा ही रूप जान। इसी प्रकार मनुष्यों में उन पर शासन करने वाले राजा लोग होते हैं। अतः राजा के रूप में मेरे को जान यानी राजा के भाव में मेरा चिन्तन कर।[२] ऐसे ही शस्त्रों में सबसे अधिक तीक्ष्ण शस्त्र वज्र के रूप में, और गौओं में इच्छित धन देने वाली दिव्य कामधेनु के रूप में, मैं ही हूँ। जनन शक्ति का, यानी उत्पत्ति का कारण होने से कामदेव भी मेरा ही रूप है। सर्पों में सर्वश्रेष्ठ सर्प वासुकि के रूप में, मैं ही हूँ।[३]

नागों में दिव्य शेषनाग मैं हूँ। जलचरों में सर्वश्रेष्ठ वरुण में, मेरा ही रूप है। पूर्व पुरुषों में सुविख्यात अर्यमा मैं हूँ और शासन करने वाले यमराज के आगे किसी का बस नहीं चलता अतः यमराज मेरा ही रूप है।[४]

दैत्यों में ईश्वरभक्त प्रहलाद और ग्रसने वालों में सर्व शक्तिमान 'काल' मैं ही हूँ। मृगों अर्थात् पशुओं में उनका राजा सिंह हूँ और पक्षियों में सर्व शक्तिमान् गरुड़ पक्षी है। अतः, गरुड़ के रूप में भी

---

१. अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः।
गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः।।२६।।

२. उच्चैः-श्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम्।
ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम्।।२७।।

३. आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक्।
प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः।।२८।।

४. अनन्तश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम्।
पितॄणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम्।।२९।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मैं ही हूँ।[1]

गमन करने वालों में वायु से बढ़कर शीघ्रगामी और कोई नहीं है अतः, वायु मेरा ही रूप है। शस्त्रधारियों में सब से अधिक प्रतापी राम हैं अतः राम में मेरा ही रूप है। इसी प्रकार, मछलियों में शक्तिशाली मगर मैं हूँ, तो नदियों में सर्वश्रेष्ठ गंगाजी मैं हूँ। क्योंकि, गंगाजल में कभी भी कीड़े नहीं पड़ते। उसे पात्र में भर कर चाहे जब तक रखा जा सकता है। अतः गंगा के जलकी दिव्य शक्ति के कारण गंगाजी में मेरा ही रूप है।[2]

देखो अर्जुन, सृष्टियों के आदि, मध्य या अन्त में से यदि किसी के भी विषय में चिन्तन किया जाय तो सृष्टियों की उत्पत्ति, स्थिति या प्रलय का आदि कारण मुझे ही होने से, उनके चिन्तन में, तू मेरा ही भाव अनुभव कर सकता है। ऐसे ही, समस्त विद्याओं में अध्यात्म-विद्या महत्वपूर्ण है क्योंकि, वह मुक्तिदाता है। अतः अध्यात्म-विद्या मैं ही हूँ। इसी प्रकार, परस्पर वाद विवाद करने वालों का जो समाधान करने के लिये, निर्णयात्मक वाद किया जाता है, तू उसे भी मुझे ही जान।[3]

अक्षरों में प्रथम अक्षर अकार मेरा ही रूप है। और शब्दों को सूक्ष्म रूप में प्रकट करने वाले समासों में श्रेष्ठ समास द्वन्द्व समास है। इसमें दोनों पद ही प्रधान होते है। अतः द्वन्द्व समास के रूप में, मैं ही हूँ। ऐसे ही घड़ी, घन्टा आदि के नाम से जो काल (समय) की गणना की जाती है वह अक्षयकाल मैं ही हूँ। इसी प्रकार, सब ओर को मुख वाला, यानी सबको देखने वाला, अथवा तू यूँ कह सकता है कि सब का धारण पोषण करने वाला 'धाता' मैं ही हूँ।[4]

---

१. प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम्।
मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम्।।३०।।

२. पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम्।
झषाणां मकरश्चास्मि स्रोतसामस्मि जाह्नवी।।३१।।

३. सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन।
अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम्।।३२।।

४. अक्षराणामकारोऽस्मि द्वन्द्वः सामासिकस्य च।
अहमेवाक्षयः कालो धाताहं विश्वतोमुखः।।३३।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इसी प्रकार सब का क्षय (नाश) करने वाला मृत्यु मैं ही हूँ। और सब लोग जो आगे होने वाले हैं उनकी उत्पत्ति का कारण भी मैं ही हूँ। अस्तु, मृत्यु एवं जन्म के समय मेरे भाव का तू चिन्तन कर सकता है। स्त्री-वाचक शब्दों में कीर्ति, श्री (शोभा), वाक् (वाणी), स्मृति (स्मरण शक्ति), मेधा (बुद्धि), धृति (धैर्य) और क्षमा (दण्ड न देना) मैं ही हूँ। इसका भाव तू यूँ समझ कि इन भावों में जो विशिष्टता है, उन विशेषताओं के अनुभव करते समय तू मेरे भाव का चिन्तन कर सकता है।[1]

गायन के योग्य जो वैदिक स्तोत्र हैं, उनमें विशेष रोचक 'बृहत् साम' है अतः बृहत्साम मैं हूँ। छन्दों में सर्वाधिक व्यापक गायत्री छंद है। उसे तू मेरा रूप समझ। पूर्वकाल में प्रचलित वर्ष का प्रथम मास हेमन्त ऋतु के अन्तर्गत मार्गशीर्ष माना जाता था जो शुभ सम्वत्सर को अलंकृत करने वाला था अतः मासो में, मैं मार्गशीर्ष (अगहन) मास हूँ। ऐसे ही ऋतुओं में ऋतुराज वसन्त मेरा ही रूप है।[2]

जितने भी प्रकार के छल हैं उनमें द्यूत (जुआ) जिसके द्वारा दूसरे की सर्व सम्पत्तियाँ उसकी अनुमति से ही दाव पर लगवा कर जीती जा सकती हैं, वह भी मैं ही हूँ। तेजस्वी महापुरुषों में जो तेज (प्रतिभा) है वह मेरा ही रूप है। और ऐसे ही जीतने वालों की जो विजय है, वह भी मेरा ही रूप है। इसी प्रकार निश्चय करने वालों का जो निश्चय है, उसे भी तू मेरा ही रूप जान और ऐसे ही सात्विक पुरुषों का जो सात्विक भाव है, उसे भी तू मेरा ही रूप समझ।[3]

चूँकि वृष्णिवंश के यादवों में सर्वाधिक सम्मान मेरा (श्रीकृष्ण का) है, अतः अपने इस वासुदेव रूप में भी मैं ही हूँ। इसी प्रकार पाण्डवों में तेरा आदर सर्वाधिक है। अतः पाण्डवों में तुझ अर्जुन के

---

१. मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम्।
कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा।।३४।।

२. बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम्।
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः।।३५।।

३. द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम्।
जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम्।।३६।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रूप में भी मैं ही हूँ, यानी तू भी मेरा ही रूप है। मनन-शील मुनियों में व्यासजी का प्रमुख स्थान है। अतः व्यास मुनि में भी मेरा ही रूप है। ऐसे ही, सूक्ष्म दृष्टि रखने वाले कवियों में शुक्राचार्य की गणना प्रथम है। अतः शुक्राचार्य को भी मेरा ही रूप समझ।[१]

इसी प्रकार दमन करने वालों का दण्ड, जीतने की इच्छावालों की नीति और गुप्त रखने योग्य भावों में मौन, मैं हूँ। क्योंकि, मौन में, यानी न बोलने में सर्वाधिक गोपनीयता है। चूँकि तत्वज्ञान ही ज्ञानियों की विशेषता है, अतः ज्ञानवान लोगों का तत्वज्ञान भी मैं ही हूँ।[२]

संक्षेप में, सब भूतों की उत्पत्ति का कारण रूप, जो बीज है, वह मैं ही हूँ। क्योंकि, जड़ और चैतन्य सृष्टि मैं ऐसा कोई भूत (जीव) नहीं है जो मेरे भाव से रहित है अर्थात् सब में यानी चर और अचर में मेरा ही रूप है। इस प्रकार से समस्त पदार्थों में मेरे भाव का तू चिन्तन कर सकता है।[३]

हे परंतप, विवेचन से तूने स्पष्ट समझ लिया होगा कि मेरी दिव्य विभूतियों का कोई अन्त ही नहीं पा सकता। प्रधान-प्रधान विभूतियों का विस्तार-पूर्वक यह वर्णन जो मैंने किया है, वह तो केवल अत्यन्त सूक्ष्म रूप में ही किया है।[४] अतएव, इस विवरण से तू यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि जो वस्तु ऐश्वर्ययुक्त, कान्तियुक्त और शक्तिशाली है, उसको तू मेरे तेज के अंश से ही उत्पन्न हुआ जान।[५]

---

१. वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनंजयः।
मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः।।३७।।

२. दण्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम्।
मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम्।।३८।।

३. यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम्।।३९।।

४. नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परंतप।
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया।।४०।।

५. यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसंभवम्।।४१।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सत्य ही, प्रत्येक वस्तु की विशेषता, मेरे भाव की स्पष्ट द्योतक है।

भगवान् के भाव को स्पष्ट अनुभव करने की कसौटी

यह वह कसौटी है, जिस पर कस कर तू जगत की प्रत्येक वस्तु में मेरे भाव का स्पष्ट अनुभव कर सकता है। अथवा हे अर्जुन, अब तू बहुत जान कर क्या करेगा, तू तो केवल इतना ही जान ले, और यही पर्याप्त है कि मैं सम्पूर्ण जगत को एक अंश मात्र से धारण करके स्थित हूँ।१

अस्तु, भाव यह है कि यदि तू जगत की प्रत्येक विशिष्ट वस्तु में मेरे अंश का चिन्तन करेगा तो वह तेरा चिन्तन मेरे रूप के अत्यन्त सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप का ही चिन्तन होगा। यदि समस्त जगत के ही विषय में तू एक साथ ही ध्यान करे, तो उसमें भी जो मेरा रूप अनुभव होगा वह मेरे वास्तविक रूप का एक अंश मात्र ही होगा, अर्थात् फिर भी तू मेरे पूर्ण भाव को प्राप्त न हो सकेगा। अस्तु, पूर्ण भावों सहित मुझको यदि तू जानना चाहता है; तो मुझे तत्व से ही जान। तब ही तू स्पष्ट समझ सकेगा कि सब कुछ वासुदेव ही वासुदेव है। वासुदेव के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं।

ॐ शम्

---

१. अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्।।४२।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ॐ

ग्यारहवाँ अध्याय

विश्वरूपदर्शनयोग

अर्थात्

विभूतियों से युक्त सम्पूर्ण
परमात्म–शक्ति का तत्व से
साक्षात्कार करने का प्रकरण

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विश्वरूपदर्शनयोग

तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा।
अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा।।१३।।

पाण्डुपुत्र अर्जुन ने उस समय देवों के देव, विराट् रूप में रूपान्तरित, श्रीकृष्ण भगवान् के शरीर में एकत्रित हुए सम्पूर्ण जगत के चैतन्य और जड़, यानी चर और अचर को अनेक प्रकार से विभक्त हुए, अर्थात् पृथक्-पृथक् रूप में स्थित देखा।।१३।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

११

दसवे अध्याय में पाठक पढ़ चुके हैं कि वैष्णवी सत्ता के आधार से ज़गत की स्थिति के तत्व को जानकर, वैष्णवी सत्ता में ही किस प्रकार से साधक स्थित हो जाया करते हैं तथा भगवान् की विभूतियों को, अर्थात् वैष्णवीशक्ति के विशिष्ट भाव को कैसे जाना जा सकता है। अब आगे ग्यारहवे अध्याय में अर्जुन विभूतियों से युक्त परमात्म-शक्ति का, तत्व से साक्षात्कार करता है। हाँ, वह साक्षात्कार करता है अपने पूर्व अर्जित संस्कारों के आधार पर।

पूर्व अर्जित संस्कारों का महत्व पाठक गण भली प्रकार समझ सकें, इस दृष्टि से तत्सम भाव को व्यक्त करने वाले एक उदाहरण को वे पहले समझने का कष्ट करें, जिससे पूर्व अर्जित संस्कार का विषय हृदयंगम करने में उन्हें अधिक सरलता प्रतीत होगी।

मान लीजिये एक व्यक्ति एक विश्व-उद्योग-चित्र-प्रदर्शनी को देख रहा है। प्रदर्शनी के पण्डालों में विविध उद्योगों के विविध चित्र टँगे हुए हैं। इन चित्रों में सभी प्रमुख देशों के उद्योगों के चित्र सम्मिलित हैं। चित्रों के ऊपर देशों के नाम भी लिखे हैं तथा चित्रों के नीचे चित्र में अंकित उद्योग की भी संक्षिप्त जानकारी दी गई है। दर्शक व्यक्ति सावधानी से प्रत्येक चित्र को देखता है। इंग्लैण्ड के उद्योगों को प्रदर्शित करने वाले चित्रों को जब वह देखता है तब उन उद्योगों के भाव उस व्यक्ति को जागृत हो उठते हैं। वह चित्र देखता भी जाता है, साथ ही अपने मन में कभी अपने ग्राम के उद्योगों से तुलना करने लगता है, कभी कल्पना में इंग्लैण्ड के कारखानों में पहुँच जाता है। इंग्लैण्ड के देशवासियों को वस्तु उत्पादन करते हुए भी अनुभव करता जाता है। इसी प्रकार, वह दर्शक अन्य पण्डालों के चित्रों का अवलोकन करते-करते अपनी कल्पना-शक्ति से कभी अपने ग्राम में, कभी देखी हुई प्रदर्शनियों में, कभी विदेशों में पहुँचकर, उन उद्योगों के विषय में मन ही मन टीका टिप्पणी भी करता जाता है, और प्रदर्शनी भी देखता जाता है। इस रीति से प्रदर्शनी देखकर वह व्यक्ति प्रदर्शनी से वापिस आ जाता है। इस दर्शक व्यक्ति के मस्तिष्क में देखी हुई प्रदर्शनी

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के सभी चित्रों के भावों के स्मृति-चिह्नों के कोष निर्माण हो चुके हैं। साथ ही, उसके द्वारा किये गये उस समय के उद्योगों से सम्बन्धित विचारों के संसार भी स्मृति-चिह्नों के रूप में उन कोषों में स्थित हो जाते हैं। इतना ही नही वह मार्गदर्शक जो चित्रों का परिचय करा रहा था उसके रूप आदि की स्मृति के संस्कार भी उन कोषों में विद्यमान हो जाते हैं।

मान लीजिये वह प्रदर्शनी का दर्शक व्यक्ति एक अध्यापक है। जिस पाठशाला में वह अध्यापक है उस पाठशाला का वार्षिकोत्सव मनाया जाना है। उत्सव के विभिन्न कार्यक्रम पृथक्-पृथक् अध्यापकों में वितरित कर दिये गये हैं। हमारे प्रदर्शनी के इस दर्शक अध्यापक को छात्र व अध्यापकों द्वारा निर्मित चित्रों के प्रदर्शन हेतु एक कक्ष को चित्रों से सजाने का काम मिला है। विश्व-प्रदर्शनी का दर्शक अध्यापक जब कक्ष को चित्रों से सजाने लगता है तब उसके पूर्व देखी हुई उद्योग-प्रदर्शनी के संस्कार एक साथ जागृत हो जाते हैं। वह चित्र लगाता भी जाता है और उसके मस्तिष्क में उस विश्व उद्योग चित्र-प्रदर्शनी के मार्गदर्शक द्वारा व्यक्त किये गये शब्द भी उसे स्मरण होने लगते हैं एवं चित्रों की सजावट के सभी ढंग उसके सामने आ जाते हैं। उसे अपने स्वयं के उस समय के तुलनात्मक विचारों का भी ध्यान आ जाता है। उसी अनुभव को वह अपने हस्तगत कक्ष को चित्रों से सजाने में थोड़ा या बहुत उपयोग करने लगता है।

विश्व-उद्योग-चित्र-प्रदर्शनी के दर्शक अध्यापक की भाँति ही अर्जुन भी अपने पूर्व अर्जित संस्कारों को स्मरण करता है। और जैसे उस अध्यापक ने विश्व प्रदर्शनी के चित्रों की सजावट के ढंगों को अपने हस्तगत कार्य, पाठशाला के कक्ष में चित्रों के लगाने में अपनाया था, वैसे ही अर्जुन अपने हस्तगत कार्य, अर्थात् युद्ध में कुशलता से लड़ने के लिये वह भी अपने पूर्व अर्जित संस्कारों को स्मरण करने लगा है। मार्गदर्शक भगवान् का रूप उसे उपदेश करते हुए उसके मानसिक पटल पर विद्यमान है। अतः अर्जुन विचारों में तल्लीन है। उसके ईश्वरार्पण बुद्धि से कर्म करने के संस्कार क्रम-क्रम से प्रबल हो रहे हैं। भगवान् कृष्ण के उपदेशानुसार प्रत्येक कर्म को कैसे ईश्वरार्पण बुद्धि से करते हैं वे ही संस्कार जागरूक हो
Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

चुके हैं, जिनका कि विवरण पाठक पिछले अध्यायों में पढ़ चुके हैं। उसके पूर्व अर्जित संस्कार इस नवीन उपस्थित युद्ध-कार्य को भी भगवान् के आदेशानुसार अर्थात् ईश्वरार्पण बुद्धि से करने को उसे प्रभावित कर रहे हैं। अस्तु, दसवे अध्याय में वर्णन की हुई विभूतियों के संस्कारों के स्मरण होते ही उसकी जिज्ञासा की तृप्ति हेतु भगवान् ने जिन-जिन विभूतियों का वर्णन उससे किया था उनका जागरूक चित्र उसकी कल्पना में खड़ा हो गया है।

अब अर्जुन को स्मरण हो रहा है कि भगवान् उसे विभूतियों में अपने चिन्तन की विधि बता रहे हैं कि जिस वस्तु में जो भी विशेष, तेजस्वी या प्रभावपूर्ण भाव है, वह उनका ही रूप है। वह कल्पना में अनेक वस्तुओं को स्पष्ट देख रहा है, जो कि भगवान् के तेज के एक अंश मात्र से स्थित हैं। जैसे, आत्मा भूतों की उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय, सूर्य, मरीचिवायु, चन्द्रमा, सामवेद, इन्द्र, मनु, चेतना, शंकर, कुबेर यक्ष, अग्नि, सुमेरु, बृहस्पति, स्कन्द, सागर, भृगुऋषि, ओंकार (ॐ), जपयज्ञ, हिमालय, अश्वत्थ, नारद, कपिलमुनि, उच्चैश्रवा, ऐरावत, राजा, वज्र, कामधेनु, कन्दर्प, वासुकि, शेषनाग, गरुड़, वरुण, अर्यमा, यमराज, प्रहलाद, काल, मृगराज, गरुड़, वायु, शस्त्रधारीराम, मगर, गंगा, सृष्टि का आदि, अन्त और मध्य, अध्यात्मविद्या, वाद, अकार, द्वन्द्व, अक्षयकाल, धाता, मृत्यु, भविष्य की उत्पत्ति का कारण, कीर्ति, श्री, वाक्, स्मृति, मेधा, धृति, क्षमा, वृहत्साम, गायत्री छन्द, मार्गशीर्ष मास, बसन्तऋतु, द्यूत, तेज, जीतने वालों की विजय, निश्चय, सात्विकभाव, वासुदेव, अर्जुन, वेदव्यास, शुक्राचार्य, दण्ड, नीति, मौन, तत्वज्ञान, सब भूतों का बीज, सब भूतों की उत्पत्ति का कारण, सब चर और अचर के सूक्ष्म रूप, यानी विभूति युक्त, कान्तिवाली, एवं शक्ति सम्पन्न समस्त वस्तुयें जिनकी गणना भी नहीं की जा सकती। वस्तुतः उसे अनुभव हो रहा है कि भगवान् सम्पूर्ण जगत को अपने एक अंश से धारण किये हुए स्थित हैं। अस्तु, वह मन ही मन सोचने लगता है कि भगवान् की निर्देशित विभूतियों से युक्त, जगत तो केवल भगवान् का एक अंश है, अतः पूरे भगवान् का रूप कैसा होगा?

> **पूर्व अर्जित संस्कारों के आधार पर विभूतियों में भगवान् के चिन्तन की बताई गई विधि के संस्मरण**

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भगवान् के पूर्ण स्वरूप के दर्शन करने का विचार आते ही अर्जुन के अन्तःकरण में नित्य विराजमान रहने वाले चतुर्भुज विष्णु भगवान्, जिनका कि वह सदैव ध्यान करता रहता था, अपने रूप को बढ़ाने लगते हैं और उनका रूप बढ़ते-बढ़ते इतना बढ़ गया कि उसके ओर छोर भी उसे दिखाई नहीं देते थे।

समस्त विभूतियों से युक्त भगवान् के पूर्ण स्वरूप का दर्शन

वस्तुतः अर्जुन, चतुर्भुज विष्णु भगवान् को अपना इष्टदेव मानता था और उनका ही अपने अन्तःकरण में स्मरण किया करता था। और सदा ही उन्हीं को सब कुछ अर्पण करके प्रत्येक कार्य किया करता था। अस्तु, वे चतुर्भुज भगवान् ही उसके मन में एकदम बृहत् आकार के हो जाते हैं और वे पृथ्वी से आकाश तक व्याप्त हुए उसे दिखाई देने लगते हैं। अब भगवान् के बृहत् आकार में जगत् की समस्त वस्तुयें उसे अत्यन्त सूक्ष्म रूप में दिखाई दे रही हैं। जिन-जिन विभूतियों का वर्णन उसने भगवान् से सुना था वे तो उसे दिख रही हैं किन्तु जिन-जिन विभूतियों की उसे भी कल्पना होती जाती थी वे सब भी उसे दिखती जा रही हैं।

अब, अर्जुन अनुभव करने लगता है कि भगवान् के बृहत् स्वरूप में ही स्थित देवता, ऋषि, महर्षि आदि सब भगवान् की स्तुति कर रहे हैं। राक्षस आदि भयभीत हो रहे हैं। अब उसे मृत्यु के रूप में भगवान् के चिन्तन का ध्यान आता है। यह ध्यान आते ही अर्जुन की इच्छानुसार युद्ध में भाग लेने वाले शूरवीर योद्धा भगवान् के मुख में उनकी दाढ़ों से पिसते हुए उसके मानस में दृष्टिगोचर होने लगते हैं। वस्तुतः युद्ध जीतने की अभिलाषा, जो कि उसके मन में सर्वोपरि थी, वह भी उसे कल्पना में साकार होती दिख रही है। वह सोचता है कि 'जीत' भी तो भगवान् का ही रूप है, अर्थात् 'विजय' के रूप में भी भगवान् का चिन्तन किया जाता है। अतः 'जीत' के भाव की कल्पना आते ही उसे अनुभव होने लगा कि भगवान् उससे कह रहे हैं "तू अवश्य जीतेगा। तेरे शत्रुओं को तूने देख ही लिया कि वे सब मेरे मुख

अर्जुन के मानसिक भावों की भगवान् के बृहत् रूप द्वारा पुष्टि

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

में प्रवेश कर रहे हैं।" इस विचारधारा में अर्जुन तल्लीन हो जाता है। अस्तु, वह मन में ही भगवान् से पूछने लगता है "आप कौन हैं? यहाँ किस कारण आप उपस्थित हुए हैं?" और स्वयं ही अपनी कल्पनानुसार उत्तर भी दे लेता है कि भगवान् 'काल' हैं और लोगों को मौत के घाट उतार रहे हैं। उसे समझ में आ रहा है कि भगवान् ने भीष्म, द्रोण, कर्ण, दुर्योधन आदि किसी को भी विशेषता लिये हुए अपनी विभूतियों में उल्लेख नहीं किया है, अतः ये सब मारे जावेंगे। जब कि अपनी विभूतियों में उसका नाम लिया है, अतः वह नहीं मारा जावेगा। चूँकि वह तभी जीवित रह सकता है जब कि युद्ध में उसकी विजय हो, अतः पाण्डवों की जीत होना निश्चित है।

उसकी कल्पना में ईश्वरार्पण बुद्धि से कर्म करने के अभ्यास के संस्कार स्पष्ट दिखलाई दे रहे है। वह भगवान् द्वारा ही विपक्षियों को मारे जाने का इच्छुक हैं, उन्हें स्वयं नहीं मारना चाहता। अतः उसकी कल्पना के अनुसार भगवान् के मुख में ही गिरकर विपक्षी समाप्त हो रहे है, ऐसा वह देख रहा है। अन्यथा, अर्जुन विपक्षियों को स्वयं मार रहा है, ऐसा भाव भी उसकी कल्पना में व्यक्त होता पर वैसा भाव नहीं व्यक्त हो रहा है। "भगवान् के मुख में अग्नि प्रज्वलित हो रही है" ऐसी कल्पना उसे होने लगती है और फिर यह कल्पना उठती है कि "भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य, कर्ण भी भगवान् के मुख में गिर रहे हैं।" इनको चूर्ण होते हुए देख कर भीष्मपितामह एवं अन्य गुरुजनादि के प्रति अर्जुन के आदर के भाव जाग्रत होने लगते हैं। ये आदर के भाव उसे अधीर बना देते हैं और अर्जुन काँपने लगता है। अब, वह भगवान् के बृहत् रूप की विकरालता का भान करने लगता है और वह व्यथित हो जाता है। तब अर्जुन मन ही मन प्रार्थना करने लगता है कि "हे भगवन् आप तो मेरे दैनिक पूजनीय चतुर्भुज विष्णु भगवान् हो जाइये" यह कल्पना आते ही वे विकराल भगवान् उसे चतुर्भुज भगवान् भान होने लगते हैं। तब पुनः अधिक स्वस्थ सा होकर अर्जुन स्मरण करता है कि भगवान् श्रीकृष्ण ने सर्वप्रथम विभूतियों का वर्णन करते हुए चतुर्भुज भगवान् यानी विष्णु को भी अपनी विभूति बतलाया था। अतः उसके अन्तःकरण में विराजमान चतुर्भुज भगवान् भी श्रीकृष्ण भगवान् के केवल एक अंश ही हैं और वे

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उन्हीं में समाये हुए हैं। अस्तु, श्रीकृष्ण भगवान् ही बृहत् आकार वाले विकराल भगवान् हैं और वे ही उसके चतुर्भुज भगवान् के रूप में हैं एवं वे ही विकराल भगवान्, श्रीकृष्ण भी हैं, जो उसके सारथी बन कर युद्ध में मार्गदर्शन को उपस्थित हैं।

अब श्रीकृष्ण भगवान् के उपदेशों के पूर्व अर्जित संस्कारों के स्फुरण से प्रभावित होकर, अर्जुन अपने को मन ही मन भक्त समझने लगा है। अतः अब भक्ति सम्बन्धी संस्कार अर्जुन के मन में उभरने लगे हैं जिन्हें इस अध्याय की समाप्ति के उपरान्त बारहवे अध्याय में पाठक पढ़ेंगे।

इस अध्याय में तो वेदव्यास जी अर्जुन के विश्व-रूप सम्बन्धी मानसिक भावों का चित्र प्रस्तुत कर रहे हैं। अर्जुन के मन में जैसे प्रश्न उठे थे वैसे ही प्रश्न वे प्रत्यक्ष अर्जुन के मुख से यहाँ करवा रहे हैं। और जैसे उसने स्वयं ही अपने मन में उत्तर दिये थे वैसे ही उसके मानसिक उत्तरों को भी वे भगवान् श्रीकृष्ण के श्रीमुख से ही व्यक्त करा रहे हैं।

मन ही मन के वार्तालाप को प्रत्यक्ष रूप से व्यक्त कराने की दृष्टि से 'दिव्यचक्षु' का महत्व

वस्तुतः मन ही मन में होने वाले वार्तालाप को प्रत्यक्ष सा होते देखना दिव्यचक्षु का ही काम है, व्यक्ति के बाह्य चर्म-नेत्रों का नहीं। अतः वेदव्यास ही मानसिक वार्तालाप को व्यक्त करने हेतु भगवान् द्वारा अर्जुन को दिव्यचक्षु प्रदान करवा देते हैं।

पाठक यह भी ध्यान रखें कि भयानक विश्व-रूप का दर्शन भगवान् श्रीकृष्ण ने पहले भी कौरवसभा में युद्ध आरम्भ होने से ही पूर्व कराया था। अतः यह भी सम्भव हो सकता है कि विराट् रूप का वर्णन पहले कभी भी प्रसंगानुसार भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को श्रवण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ हो। अस्तु अनुकूल अवसर आने पर समयानुसार परिवर्तन के साथ अर्जुन को पुनः विश्व-रूप का स्मरण हो आना अस्वाभाविक नहीं है। सत्य ही, इस प्रकार स्मरण शक्ति से देखना, दिव्यचक्षु से ही देखना कहा जा सकता है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जहाँ मानसिक कल्पना में एक ही व्यक्ति प्रश्न पूछता है और वही व्यक्ति मानसिक उत्तर देता है वहां तक तो, वेदव्यासजी प्रश्न पूछने का कार्य अर्जुन से और उत्तर देने का कार्य भगवान् से करा देते हैं। परन्तु, जहाँ मानसिक भगवान् का बृहत् आकार में होना और उसे दिखाने का भाव व्यक्त कराना सम्भवतः उन्होंने आवश्यक समझा, वहाँ साक्षी के तौर पर उन्होंने संजय से उस भाव को व्यक्त कराया है। वैसे भी, इस प्रकार के कार्य के लिये संजय उपयुक्त पात्र है। क्योंकि उसे भगवान् द्वारा दिव्य दृष्टि प्राप्त है, * दूसरे संजय सूत भी है। महाभारत युद्ध के दोनों पक्षों की सहमति से निर्धारित नियमानुसार सूत युद्ध में दोनों ही पक्षों में आ जा सकता था। सूत पर अर्थात् घोड़ों की सेवा करने वाले पर प्रहार वर्जित था। × इतना ही नहीं वरन् राजा धृतराष्ट्र को युद्ध से अवगत कराने के लिये वेदव्यास जी ने संजय को वरदान भी

अर्जुन द्वारा देखे गये बृहत् आकार के रूप को दिखाने के लिये संजय की आवश्यकता

श्री महाभारत उद्योगपर्व के अन्तर्गत भगवद्ध्यानपर्व में विश्वरूपदर्शन विषयक एकसौइकत्तीसवें अध्याय के श्लोक चौदह एवं पन्द्रह में स्पष्ट उल्लेख है कि कौरव सभा में महात्मा श्रीकृष्ण के भयानक विश्वरूप को देखकर द्रोणाचार्य, भीष्म, परम बुद्धिमान् विदुर, महाभाग संजय तथा तपस्या के धनी महर्षियों को छोड़ कर अन्य सब लोगों की आँखें बन्द हो गई थीं। इन द्रोण एवं संजय आदि को भगवान् जनार्दन ने स्वयं ही दिव्य दृष्टि प्रदान की थी।

न्यमीलयन्त नेत्राणि राजानस्त्रस्तचेतसः।
ऋते द्रोणं च भीष्मं च विदुरं च महामतिम्।।१४।।
संजयं च महाभागमृषींश्चैवं तपोधनान्।
प्रादात् तेषां स भगवान् दिव्यं चक्षु जनार्दन।।१५।।

× श्री महाभारत भीष्मपर्वणि जम्बूखण्ड विनिर्माणपर्व के प्रथम अध्याय के श्लोक बत्तीस में लिखा है कि घोड़ों की सेवा के लिये नियुक्त हुए सूतों, बोझ ढोने वालों, शस्त्र पहुँचाने वालों तथा भेरी और शंख बजाने वालों पर कोई किसी प्रकार भी प्रहार न करे।

न सूतेषु न धुर्येषु न च शस्त्रोपनायिषु।
न भेरी शङ्खवादेषु प्रहर्तव्यं कथं च न।।३२।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दिया था। ÷ उपरोक्त सभी कारणों से मन की बातें व्यक्त कराने के लिये संजय उपयुक्त पात्र है। इस समस्त विवेचन से पाठक समझ सकते हैं कि अभी अर्जुन ने भगवान् से प्रत्यक्ष कुछ नहीं कहा है। चूँकि व्यूह रचना का सेनाध्यक्ष धृष्टद्युम्न था ही अतएव, अर्जुन को सोचने का अवसर था। अस्तु, ऐसा लगता है कि युद्ध को अवश्यम्भावी समझ कर, अर्जुन थोड़ी देर तक मौन रहता है। और इन अध्यायों में व्यक्त विचारों के पूर्व संस्कारों के आधीन होकर उन्हीं विचारों को स्मरण करने लगता है। और वह अपने को, युद्ध करने के लिये, वैसे ही तैयार कर रहा है, जैसे कि पाठक विषय प्रवेश शीर्षक में जामुन के गुच्छे को लाने वाले वीर बालक के विषय में पढ़ चुके हैं, जिसने कर्त्तव्यपालन करने की विचारधारा द्वारा अपने को कर्त्तव्यारूढ़ होने के लिये तैयार किया था।*

÷ इसी पर्व के अध्याय दो श्लोक नौ से बारह तक में उल्लेख है कि वेदव्यास जी ने संजय को वंरदान दिया था कि वह युद्ध का सब समाचार बताया करेगा। सम्पूर्ण संग्राम-भूमि में कोई ऐसी बात नहीं होगी जो इसको प्रत्यक्ष न दिखाई देती हो। संजय दिव्य दृष्टि से सम्पन्न होकर सर्वज्ञ हो जावेगा। कोई भी बात प्रकट हो या अप्रकट, दिन में हो या रात में अथवा वह मन में ही क्यों न सोची जाय, संजय सब कुछ सोच कर जान लेगा। इसे कोई हथियार नहीं काट सकता, इसे परिश्रम या थकावट की बाधा नहीं होगी। गवल्याण का पुत्र यह संजय इस युद्ध से जीवित बच जावेगा।

वैसे भी प्रायः जनसाधारण इस बात को जानता है कि प्रायः कुछ चतुर लोग ऐसे होते हैं जो दूसरे के मन में आई हुई बात को जान जाते हैं। कुछ लोग संमोहन विद्या (Hypnotism) द्वारा भी दूसरे के मनोगत भावों को प्रायः जान लेते हैं। जब, साधारण लोग भी ऐसे प्रयोग कर लेते हैं तब विशेष तपस्वी महात्मा लोग तो भली प्रकार से मनोगत भावों को जान लेते होंगे, इसमें आश्चर्य ही क्या? इसीलिये भगवान् को अन्तर्यामी कहते हैं। क्योंकि, वे समस्त संसार के मनोभावों से नित्य ही परिचित रहते हैं।

*अर्जुन को थोड़ी देर मौन साध लेने से, युद्ध आरम्भ करने में कोई रुकावट नहीं आती। क्योंकि, युद्धारम्भ के लिये शंख बज जाने के बाद जब अर्जुन को भगवान् ने समझा कर युद्ध करने को तैयार कर दिया इसके बाद भी युधिष्ठिर आदि पाण्डव तथा श्रीकृष्ण

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इतनी पृष्ठ भूमि के उपरान्त अध्याय का भाव सरलता से समझ में आ सकेगा अतः पाठक अब अध्याय का विषय पढ़ें।*

हे भगवान्, आपने अपना कृपा भाव प्रकट करके जो मुझे परम गापनीय अध्यात्म विषय का उपदेश दिया है, उससे मेरा यह

भगवान् स्वयं, धर्मयुद्ध के नियमानुसार, भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और शल्य को नमस्कार करने गये थे और उनसे आशीर्वाद एवं अनुमति लेने के उपरान्त ही उन्होंने युद्धारम्भ किया था। क्योंकि धर्मयुद्ध का यह नियम था कि यदि वयोवृद्ध योद्धाओं से युद्ध करना आवश्यक हो तो युद्धारंभ से पूर्व उन वयोवृद्धों से अनुमति ले ली जावे। उनकी अनुमति देने पर उनसे युद्ध करना धर्म-संगत माना जाता था।

महाभारत भीष्मपर्वणि, भीष्मवधपर्व के तेतालीसवें अध्याय में उल्लेख है कि धर्मराज युधिष्ठिर मौन एवं पूर्वाभिमुख हो शत्रुसेना की ओर चले गये। तब अन्य पाण्डव भाई भी उनके पीछे-पीछे ग़ये। श्रीकृष्ण भी उनके साथ-साथ गये थे। भीमसेन आदि के प्रश्न करने पर कि युधिष्ठिर महाराज शत्रु सेना में क्यों जा रहे हैं, भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा कि इनका अभिप्राय उन्हें ज्ञात हो गया है। ये भीष्मादि समस्त गुरुजनों से आज्ञा लेकर युद्ध करेंगे।

श्रूयते हित पुरा कल्पे गुरूननुमान्य यः।
युध्यते स भवेद् व्यक्तमपध्यातो महत्तरै।।२३।।

"सुना जाता है कि प्राचीनकाल में जो गुरुजनों की अनुमति लिये बिना ही युद्ध करता था, वह निश्चय ही उन माननीय पुरुषों की दृष्टि में गिर जाता था।"

अनुमान्य यथा शास्त्रं यस्तु युध्येन्महत्तरैः।
ध्रुवस्तस्य जयौ युद्धे भवेदिति मतिर्मम।।२४।।

"जो शास्त्र की आज्ञा के अनुसार माननीय पुरुषों से आज्ञा लेकर युद्ध करता है, उसकी उस युद्ध में अवश्य विजय होती है, ऐसा मेरा विश्वास है।"

*भगवान् के ये वचन कि "पूर्ण भावों के सहित यदि तू मुझको जानना चाहता है तो मुझे तत्व से ही जानना होगा" जैसे ही अर्जुन को स्मरण होता है वैसे ही उसे अब भगवान् का पूर्ण

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अज्ञान मिट गया है, यानी अब मुझे कर्तृत्वभावना आ गई है।[1]

हे कमल पत्र सदृश नयन वाले भगवान्! मैंने जीवों की उत्पत्ति और प्रलय दोनों के सम्बन्ध में आपसे विस्तार से सुना है और साथ ही आपका अविनाशी माहात्म्य (प्रभाव) भी सुना है।[2] हे भगवन् आप अपने को जैसा कहते हैं वैसे ही आप यथार्थ में हैं भी। हे पुरुषोत्तम, अब मैं आपके विभूतिमय, अर्थात् ऐश्वर्ययुक्त, तेजोमय स्वरूप को प्रत्यक्ष देखना चाहता हूँ।[3] यदि मैं आपके उस विभूतिमय पूर्णस्वरूप को देख सकता हूँ, अर्थात् आप मुझे वैसा स्वरूप दिखाने का अधिकारी मानते हैं तो हे भगवान्! हे योगेश्वर! आप अपने उस अविनाशी स्वरूप का दर्शन करा कर मुझे अनुगृहीत कीजिये।[4]

विश्व रूप दर्शन के हेतु अर्जुन का नम्र निवेदन

भावों सहित वह रूप जिसका कि उसने अपने मन में ध्यान किया था, स्मरण होने लगा कि श्रीकृष्ण भगवान् उसके अन्तःकरण में दिखने लगे थे और उनके विग्रह के अन्दर ही वह अपने इष्ट चतुर्भुज विष्णु भगवान् का दर्शन करने लगा था। क्योंकि, उसने श्रीकृष्ण भगवान् द्वारा उनकी विभूतियों के वर्णन में सुना था कि "आदित्यों में विष्णु के रूप में भगवान् का चिन्तन किया जा सकता है।" तब उसने भगवान् से यह निवेदन किया था कि भगवान् उसका अज्ञान मिट गया है और उसकी प्रवृत्ति कर्त्तव्य-पालन की ओर होने लगी है। अस्तु, वेदव्यास जी, अब अर्जुन के मुख से ही निवेदन करा रहे हैं कि –

१. अर्जुन उवाचः मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम्।
यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम।।१।।

२. भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया।
त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यमपि चाव्ययम्।।२।।

३. एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मानं परमेश्वर।
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम।।३।।

४. मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो।
योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम्।।४।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विश्वरूप दर्शन देने की भगवान् की स्वीकृति एवं उसे देखने को विवेक बुद्धि की जागृति

*हे पार्थ, मेरे सैकड़ों तथा हजारों नाना प्रकार के और नाना ढंग के अनेकों आकृति वाले दिव्य रूपों को देख।[1] जिन विभूतियों को तू पहिले सुन चुका है उनमें से कुछ को और भी विस्तार से अब देख तथा अन्य विभूतियों को भी तू देख। हे भारत, बारह आदित्य, आठ बसु, ग्यारह रुद्र, दोनों अश्विनी कुमार, उनन्चास मरुतगण तू देख और बहुत ऐसे आश्चर्यों को भी देख जिनको तूने पहिले कभी नहीं देखा था।[2]

हे निद्रा को जीतने वाले अर्जुन, अब तू इस मेरे शरीर में एक ही स्थान पर एकत्रित हुए चर और अचर सहित समस्त जगत को देख तथा और भी जो तेरे मन में है वह भी देख।[3] किन्तु, तू अपने इन नेत्रों से, इतनी विस्तृत लम्बी चौड़ी मेरी देह को जिसमें समस्त जगत ही समाया है, देखने में असमर्थ है। हाँ, केवल बुद्धि से ही तू अनुभव कर सकता है। अतः मैं तेरे लिये दिव्यचक्षु यानी दिव्यदृष्टि प्रदान करता हूँ, अर्थात् तेरी विवेक बुद्धि जाग्रत करता हूँ, यानी तुझे बुद्धि से अनुभव करने के लिये मैं प्रेरित करता हूँ। अस्तु, तू विवेक बुद्धि से मेरे योग और सामर्थ्य को देख, अर्थात् मेरी सामर्थ्य को देख कि वे विभूतियाँ कैसे मुझमें समाई हुई हैं।[4]

---

*वस्तुतः, अर्जुन स्वयं अपने मन में प्रश्न करता है और स्वयं ही मन में उत्तर दे लेता है मानो भगवान् स्वयं ही उसके रूप में है और उसकी प्रार्थना स्वीकार कर, उत्तर दे रहे हैं। अस्तु, वेदव्यास जी भगवान् के श्रीमुख से कहला रहे हैं कि -

१. श्रीभगवानुवाचः पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च।।५।।

२. पश्यादित्यान्वसून्रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा।
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत।।६।।

३. इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम्।
मम देहेगुडाकेशयच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि।।७।।

४. न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा।
दिव्यं ददामि ते चक्षुःपश्य मे योगमैश्वरम्।।८।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

*हे राजन्! महायोगेश्वर हरि भगवान् ने जब यह कहा कि "मैं तुझे दिव्यचक्षु प्रदान करता हूँ" तब उन्होंने अपना परम ऐश्वर्ययुक्त रूप दिखलाया।[1] उस दिव्य स्वरूप के अनेक मुख और नेत्र थे। वे अनेक अद्‌भुत दृश्य वाले दिखाई पड़ते थे। वे अनेक आभूषण धारण किये हुए थे। और उनके हाथों में बहुत से दिव्य शस्त्र थे, अर्थात् वे अपने हाथों में अनेक दिव्य शस्त्र उठाये हुए थे।[2] वे दिव्य माला और वस्त्रों को धारण किये हुए थे। उनके शरीर में दिव्य गन्ध का अनुलेपन हो रहा था। सब प्रकार के आश्चर्यों से

विश्व रूप का दर्शन

---

*वस्तुतः, विवेक बुद्धि से ही समस्त विश्व की भगवान् के शरीर में स्थिति प्रतीत होना सम्भव है। अस्तु, विश्वरूप को देखने की कल्पना करते ही अर्जुन भावातिरेक के कारण मस्त हो जाता है और वह अपनी कल्पना में भगवान् के विश्वरूप का दर्शन करने लगता है। जब अर्जुन एक क्षण मात्र को पुनः पूर्ववत् देखने की स्थिति में हो जाता है तब उसने जो कुछ कल्पना में देखा था उसका यथावत् वर्णन करने में वह अपने को असमर्थ पाता है। चूँकि भगवान् के रूप को अर्जुन कल्पना में देख रहा है अतः देखते समय न तो वह स्वयं ही जो कुछ देख रहा है उसका वर्णन कर सकता है और न स्वयं कल्पित भगवान् ही, जो अर्जुन के रूप में घुलमिल रहे हैं, वर्णन कर सकते हैं। हाँ, केवल वही वर्णन कर सकता है जो साक्षी हो। अतः वेदव्यास जी संजय से उस रूप का वर्णन कराते हैं।

यह उतने समय का ही वर्णन हो सकता है जितनी देर में अर्जुन की देखने की कल्पना प्रबल हुई थी और भगवान् ने उसकी कल्पना के अनुसार वैसा ही रूप धारण कर लिया था। जैसे, पाठक एक क्षण को विभिन्न वस्तुओं के नामों को मन में बोलें, और वे नाम लेने के साथ ही उन वस्तुओं के रूप भी देखते चलें उदाहरणार्थ पृथ्वी, आसमान, समुद्र, पहाड़, जंगल, कैलाश, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र,

१. संजय उवाच, एवमुक्त्वा ततो राजन्महायोगेश्वरो हरिः।
दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम्।।९।।

२. अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम्।
अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम्।।१०।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

युक्त वे दिखाई दे रहे थे। उनके आकार की सीमा नहीं दिखती थी, अर्थात् वे बृहत् आकार के दिख रहे थे। उनके मुख चारों ओर दिखाई देते थे, ऐसा भगवान् का विश्वरूप अर्जुन ने देखा।[1]

वस्तुतः, उस समय विश्वरूप भगवान् का जो प्रकाश दिख रहा था, उसे देखकर ऐसा अनुभव होता था, मानो आकाश में यदि एक साथ हजारों सूर्यों का प्रकाश हो गया हो, तो ही कदाचित् वह प्रकाश उन महात्मा विश्वरूप भगवान् के किंचित् प्रकाश के सदृश होवे, यानी उनका प्रकाश एक साथ उदय हुए हजार सूर्यों के प्रकाश से भी बहुत अधिक प्रतीत होता था।[2]

सत्य ही, पाण्डुपुत्र अर्जुन ने उस समय उन देवों के देव, विराट रूप में रूपान्तरित, श्रीकृष्ण भगवान् के शरीर में एकत्रित हुए सम्पूर्ण

सितारे, चीन, जापान, अमेरिका, इंग्लैण्ड, चीता, हाथी, घोड़ा, बैल, राक्षस, देव, ऋषि, गंगा, यमुना, क़न्दराओं में बैठे तपस्वी, श्मशान भूमि, जच्चाखाना, नारी के उदर में भ्रूण, शेर के मुख में मृग, विकराल प्रज्वलित अग्नि और उसमें धड़ाधड़ दौड़-दौड़ कर गिरते हुए प्राणी, सुन्दर उपवन, मालाओं से भूषित विष्णुभगवान् आदि। इन नामों के बोलने और लिखने में तो कुछ देर भी लग सकती है, लेकिन यदि कोई प्रश्न करे कि अभी-अभी हमने क्या-क्या देखा तो हम यही कहेंगे कि हमने सब कुछ देखा। आश्चर्यमय वस्तुयें, मनोरंजक चीजें, पूजनीय महापुरुष, भौगोलिक स्थान, धरती, आकाश, सभी कुछ देखा।

चूँकि अर्जुन युद्ध भूमि में था, युद्ध का शंख बज गया था, अतः उसकी कल्पना में योद्धा का रूप झूम रहा था। उसी की कल्पना के अनुसार भगवान् भी एक दिव्य योद्धा के रूप में उसे दृष्टिगोचर हुए। अस्तु, अर्जुन ने जो-जो अपनी कल्पना में देखा उसका वर्णन वेदव्यासजी संजय के मुख से धृतराष्ट्र के प्रति कहलाकर व्यक्त कराते हैं। अतः संजय धृतराष्ट्र से कहते हैं कि -

१. दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम्।
सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम्।।११।।

२. दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता।
यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः।।१२।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जगत के चैतन्य और जड़ यानी चर और अचर को अनेक प्रकार से विभक्त हुए, अर्थात् पृथक्-पृथक रूप में स्थित अनुभव किया।[1] ऐसे रूप को देखते ही अर्जुन आश्चर्यान्वित हो गया। उसे रोमांच हो गया। उसने बड़ी श्रद्धा और भक्ति से विराट् रूप में श्रीकृष्ण भगवान् को सिर झुका कर प्रणाम किया और वह हाथ जोड़ कर कहने लगा।[2]

अर्जुन ने जैसे विश्वरूप का दर्शन किया उसका अर्जुन के द्वारा ही वर्णन

हे भगवान्। मैं आपके शरीर में स्थित समस्त देवताओं को, अनेक प्रकार के जीवों के समूहों को, कमल के आसन पर विराजमान ब्रह्माजी को, भगवान् शंकर को, सम्पूर्ण ऋषिगण को तथा दिव्य सर्पों को देख रहा हूँ।[3]

हे विश्व का रूप धारण किये हुए विश्व के स्वामी! मैं देख रहा हूँ कि आपके अनेक तो नेत्र हैं और अनेक ही भुजायें हैं। अनेक पेट हैं और अनेक ही आपके मुख हैं एवं सब ओर से आप अनन्त रूपवाले हैं। इतना ही नहीं, हे भगवन्! मुझे तो आपका इतना बृहत् विस्तार दिख रहा है कि न तो मैं यह जान पाता हूँ कि आपका आरम्भ कहाँ से है और कहाँ आप अन्त हुए हो? आपका आदि और अन्त न जानने से मुझे आपके मध्य का भी पता नहीं

---

१. तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा।
अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा।।१३।।

२. ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनंजयः।
प्रणम्य शिरसा देवं कृताञ्जलिरभाषत।।१४।।

वस्तुतः अब अर्जुन स्वयं ही अपने मन में ही सावधान हो गया। और वह मन ही मन अपनी कल्पना से प्रकट हुए विराट् भगवान् के रूप का वर्णन करने लगा। अर्जुन के द्वारा मन ही मन में लिये गये विराट् भगवान् के उस वर्णन को वेदव्यास जी अर्जुन से ही पाठकों के लिये कहला रहे हैं। अस्तु, अर्जुन ने कहा कि -

३. अर्जुन उवाच : पश्यामि देवांस्तव देव देहे,
सर्वांस्तथा भूतविशेषसङ्घान्।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थ
मृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान्।।१५।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

लगता है।[1]

सचमुच, सब ओर से आप दैदीप्यमान हैं। आप सभी ओर से तेजपुंज हैं। आप मुकुट धारण किये हए हैं। गदा और चक्र को लिये हुए हैं। आप प्रज्वलित अग्नि एवं सूर्य जैसे चमक रहे हैं। यदि आपकी ओर देखने का प्रयत्न करता हूँ तो आँखे ठहरती ही नही हैं। निस्सन्देह , मुझे सब ओर से असीम दिखाई दे रहे हैं।[2]

मुझे तो, हे भगवन्! ऐसा प्रतीत होता है कि जो जानने योग्य परम अक्षर यानी अविनाशी भगवान् कहे जाते हैं वे आप ही हैं। आप ही इस विश्व के श्रेष्ठ आश्रय दाता हैं। आप ही उस धर्म के , जो सनातन काल से चलता आ रहा है, रक्षक हैं। मेरी दृष्टि में तो आप ही सनातन (आदि) अविनाशी परम पुरुष हैं।[3]

हे भगवन् , मैं देखता हूँ कि आप आदि , मध्य और अन्त से रहित हैं। आपका पराक्रम अमित है। आप अनेक भुजाओं वाले हैं, आपके नेत्र एक क्षण को चन्द्र सदृश शीतल प्रतीत होते हैं किन्तु, दूसरे ही क्षण सूर्य के सदृश अत्यन्त तीक्ष्ण प्रभायुक्त दिखाई देते हैं। आपके मुख ने प्रज्वलित अग्नि का रूप धारण कर रखा है। आप अपने तेज से इस समस्त जगत को तपा

---

१. अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं
पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम्।
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं
पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप ।।१६।।

२. किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च
तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम्।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ता-
द्दीप्तानलार्कद्यु-तिमप्रमेयम् ।। १७।।

३. त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं
त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता
सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ।।१८।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रहे हैं।[1]

हे महात्मन्! मैं देख रहा हूँ कि आप ही आकाश और पृथ्वी के बीच के समस्त भाग में व्याप्त हो रहे हैं। इस प्रकार सभी दिशाओं में भी आप ही आप का रूप तो दृष्टिगोचर हो रहा है। आपके इस अद्भुत और उग्र रूप को देख कर पृथ्वी के ऊपर, नीचे तथा पृथ्वी के रहनेवाले तीनो लोकों के सभी जीव अत्यन्त व्याकुल हो रहे हैं।[2]

* ये देवताओं के समूह आप में ही प्रवेश कर रहे हैं। इनमें से कई आपके अद्भुत एवं उग्र रूप को देखकर भयभीत हो रहे हैं और हाथ जोड़कर आपके महिमामय शब्दों का उच्चारण कर रहे हैं। महर्षिगण और सिद्धों के समूह स्वस्तिवाचन सहित विस्तृत स्तोत्रों द्वारा आपकी स्तुति कर रहे हैं।[3] ये जो ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, आठ वसु, साध्यगण, विश्वेदेव, दोनों अश्विनीकुमार, उनचास मरुद्गण, पूर्वपुरुषों का समुदाय (ऊष्मपाः) गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और सिद्धगणों के समूह हैं वे भी सब के सब आश्चर्य से आपकी

---

१. अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्य-
मनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम्।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं
स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम् ।।१६।।

२. द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि
व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः।
दृष्ट्वाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं
लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन् ।। २०।।

* भाव यह है कि अर्जुन स्वयं ही कुछ कुछ व्याकुल सा हो रहा है। इसलिये उसे अपनी व्याकुल आँखों से सभी व्याकुल दिखाई दे रहे हैं।

३. अमी हि त्वां सुरसंघा विशन्ति
केचिद्भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति।
स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसंघाः
स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः ।। २१।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ओर देख रहे हैं।[१]

हे महाबाहो ! आपके ऐसे महान् रूप को देख कर, जिसमें कि आपके अनेक मुख, अनेक नेत्र, अनेक हाथ, अनेक पैर, अनेक जंघायें, बहुत से पेट, बहुत सी विकराल भयंकर दाढ़ें हैं, सब जीव व्याकुल हो रहे हैं। साथ ही, मैं भी इन जीवों की तरह ही व्याकुल हो रहा हूँ।[२]

क्योंकि हे विष्णो ! आकाश को छूने वाले, दैदीप्यमान, अनेक आकृतियों वाले, मुख फैलाये हुए और प्रकाशमान एवं विज्ञान नेत्रों से युक्त आपको देखकर मेरा अन्तःकरण भयभीत हो रहा है। मेरा धैर्य छूटा जा रहा है और मैं अशान्त होता जा रहा हूँ।[३]

हे देवेश, विकराल दाढ़ों से युक्त और प्रलयकाल जैसी अग्नि से प्रज्वलित आपके मुखों को देख कर न तो मैं दिशाओं को पहिचान पाता हूँ और न मैं अपने को स्वस्थ ही अनुभव कर रहा हूँ। इसलिये हे जगत के स्वामी, जगन्नाथ, आप प्रसन्न हो जावें।[४]

---

१. रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या
विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसंघा
वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे ।।२२।।

२. रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं
महाबाहो बहुबाहूरुपादम्।
बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं
दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाहम् ।।२३।।

३. नभः स्पृशं दीप्तमनेकवर्णं
व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम्।
दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा
धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो।।२४।।

४. दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि
दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि।
दिशो न जाने न लभे च शर्म
प्रसीद देवेश जगन्निवास।।२५।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

राजाओं के समुदाय के सहित ये धृतराष्ट्र के समस्त पुत्र, भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य तथा वह सूतपुत्रकर्ण भी, साथ ही हमारे पक्ष के भी प्रधान-प्रधान योद्धा शीघ्रता से आपके विकराल एवं भयंकर दाढ़ों से युक्त मुखों में प्रवेश कर रहे हैं। इनमें से बहुतसों के तो मस्तक चूर्ण हो गये हैं और वे चूर्ण हुए मस्तक आपकी दाढ़ों के बीच में चिपके हुए दिखाई देते हैं।[१]

जैसे कि नदियों के बहुमात्रा में जल के प्रवाह समुद्र की ओर मुख किये हुए अपना अस्तित्व समाप्त करने को समुद्र में गिरते हैं, जैसे पतंग प्रज्वलित अग्नि में अपना नाश करने के लिए अत्यन्त वेग से प्रवेश करते हैं; वैसे ही ये सब लोग और शूरवीर राजादि भी आपके प्रज्वलित मुखों में अपने नाश के लिये अत्यन्त वेग से प्रवेश कर रहे हैं।[२]

हे विष्णो! आप उन सब शूरवीर राजाओं को अपने प्रज्वलित मुखों द्वारा ग्रसते हुए सब ओर से चाट रहे हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि आपके प्रकाश की तीक्ष्ण किरणें आपके तेज के द्वारा

---

१. अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः
सर्वे सहैवावनिपालसंघै।
भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ
सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः।।२६।।
वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति
दंष्ट्राकरालानि भयानकानि।
केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु
संदृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङ्गैः।।२७।।

२. यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः
समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति।
तथा तवामी नरलोकवीरा
विशन्ति वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति।।२८।।
यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा।
विशन्ति नाशाय समृद्ध वेगाः।
तथैव नाशाय विशन्ति लोका -
स्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः।।२९।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सम्पूर्ण जगत को परिपूर्ण करके तपा रही है।[1]

> विराट रूप की भयंकरता से भयभीत अर्जुन के द्वारा उनका परिचय प्राप्त करना।

अस्तु, कृपा करके मुझे यह बता कर अनुगृहीत कीजिये कि इस उग्र रूप को धारण किये हुए आप कौन हैं? हे देवों में श्रेष्ठ देव! मैं आपको नमस्कार करता हूँ । आप प्रसन्न होने की कृपा करें । हे आदि पुरुष। मैं आपको यथार्थ रूप से जानना चाहता हूँ क्योंकि आपकी चेष्टाओं को देख कर मेरी समझ में यह नहीं आता कि आप इस भयंकर रूप को धारण करके वस्तुतः क्या करना चाहते हैं।[2]

> विराट रूप भगवान का अपना परिचय देते हुए अर्जुन को युद्ध जीतने का आश्वासन् देना

* हे अर्जुन, इस युद्ध में सम्मिलित हुए शूरवीरों का नाश करने के लिये मैं "महाकाल" हूँ, जिसने कि अपना आकार बहुत बढ़ा लिया है। मेरी इस समय की जो चेष्टायें हैं वे इन शूरवीरों को नष्ट करने के लिये हैं। जितने भी विपक्षी दल की सेना में स्थित शूरवीर योद्धा हैं वे सबके सब नहीं रहेंगे, अर्थात् मारे जावेंगे, चाहे

---

१. लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ता-
ल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः।
तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं
भासस्तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णो ।।३०।।

२. आख्याहि में को भवानुग्ररूपो
नमोस्तु ते देववर प्रसीद ।
विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं
न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम् ।।३१।।

* वस्तुतः, अर्जुन अपने मन ही मन, भगवान् के माध्यम से, अपनी भावनाओं के अनुसार जैसी जैसी शूरवीरों की युद्ध में स्थिति होने वाली है वैसी वैसी ही कल्पनाओं की साकार मूर्तियाँ अपने अन्तः करण में उत्पन्न हुई अनुभव कर रहा है। इस प्रकार वह कर्त्तव्यरत होने के लिये अपने को दृढ़ कर रहा है। तब, वह स्वयं ही इस प्रकार

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तू युद्ध कर चाहे न कर क्योंकि, इनका अन्त काल आ गया है।[1]

इसलिये हे सव्यसाचिन (बाँये हाथ से भी बाण चलाने वाले) अर्जुन तू तो केवल निमित्त मात्र ही बन जा। क्योंकि ये सब शत्रु दल के योद्धा तो पहिले से ही मेरे द्वारा मारे जा चुके हैं। अतएव, तू उठ, और यश को प्राप्त कर। शत्रुओं को जीत कर समृद्धिशाली राज्य का उपभोग कर।[2]

इसमें किंचित भी संदेह नहीं है कि तू शत्रुओं को जीतेगा। अतः युद्ध कर। भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य, जयद्रथ, कर्ण तथा अन्य बहुत से शूरवीर योद्धा मेरे द्वारा मारे हुये हैं। उनसे भयभीत होने की आवश्यकता नहीं। तू उन मरे हुओं को वेधड़क मार।[3]

* हे राजन्। भगवान् श्रीकृष्ण के इस कथन को सुन कर मुकुटधारी अर्जुन भयभीत होकर हाथ जोड़ने लगा और कांपते कांपते भगवान् को नम्रता से नमस्कार करके रुँधेहुए गले से बोला,

---

मानो कि भगवान् उसके प्रश्न का उत्तर दे रहे हैं, अपने मन की मन में, अपनी भावनाओं के अनुसार उत्तर देता है। अर्जुन के द्वारा मन ही मन भगवान् बन कर जो उत्तर दिया गया उस उत्तर को वेद व्यास जी भगवान् श्रीकृष्ण के मुख से दिला रहे हैं। अस्तु, भगवान् कहते हैं कि-

१. श्री भगवानुवाचः कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो
लोकान्समाहुर्तुमिह प्रवृत्तः।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे
येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः ।।३२।।

२. तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व
जित्वा शत्रून् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव
निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ।।३३।।

३. द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च
कर्णं तथान्यानपि योधवीरान्।
मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा
युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान् ।।३४।।

* जब अर्जुन ने अपने मन ही मन में भगवान् के उत्साहवर्द्धक

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अर्थात् अर्जुन ने गद्‌गद् वाणी में कहा।[1]

* हे इन्द्रियों के स्वामी भगवान्, यह उचित ही है कि देवादि सहित समस्त जगत आप में अनुराग रखता है। वह आपकी कीर्ति वर्णन कर कर के हर्षित हो रहा है और आपमें आसक्त हो रहा है। राक्षस लोग, जो आपसे सदा भयभीत रहते हैं, आपको देखकर समस्त दिशाओं में अर्थात् इधर-उधर भाग रहे हैं और सब सिद्धों के समुदाय, जो राग-द्वेष से रहित हैं, आपको नमस्कार कर रहे हैं।[2]

> अर्जुन के द्वारा विराटरूप में भगवान् की अद्‌भुत महिमा का वर्णन एवं उनकी महिमा पूर्व परिचय न होने के कारण अपने द्वारा किये गये अशिष्ट व्यवहार की क्षमा याचना

हे महात्मन्, आप सब से बड़े हैं। सृष्टि के रचने वाले ब्रह्मा के भी आप आदि कारण हैं। अतः ये सिद्धों के संघ आपको क्यों न नमस्कार करें? अर्थात् उन्हें नमस्कार करना ही चाहिये। क्योंकि

वचनामृत सुने तो वह मन ही मन में उन्हें हाथ जोड़कर, डरते हुए कृतज्ञता प्रकट करता है। हाथ जोड़ने आदि की अर्जुन की मानसिक क्रिया को तो वही व्यक्त कर सकता है जो साक्षी हो, अतः वेदव्यास जी यह कार्य पुनः संजय द्वारा धृतराष्ट्र के प्रति कहलाकर व्यक्त करा रहे हैं। अस्तु संजय कहता है कि-

१. <u>संजय उवाच</u>: एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य
कृताञ्जलिर्वेपमानः किरीटी।
नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं
सगद्‌गदं भीतभीतः प्रणम्य ।।३५।।

* अर्जुन ने जो मन ही मन भगवान् की स्तुति करते हुए अपने उद्‌गार व्यक्त किये थे उन्हीं विचारों को अब वेदव्यासजी अर्जुन के मुख से ही कहला रहे हैं। अस्तु, अर्जुन कहता है कि-

२. अर्जुन उवाचः स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या
जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति
सर्वे नमस्यान्ति च सिद्धसंघा।।३६।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उनकी सिद्धि के लक्ष्य आप ही हैं। दे देवों के ईश्वर, हे जगत के आश्रय स्थान, हे अनन्त, आप अविनाशी, अक्षर परम ब्रह्म हैं। आप सत् और असत् से परे हैं। चूँकि आपके अस्तित्व को कोई मना नहीं कर सकता, अतः आप 'सत्' कहलाते हैं, और चूँकि आपके इस स्वरूप का प्रत्यक्ष दर्शन कराया नहीं जा सकता, अतः आप असत् से भान होते हैं। इस प्रकार से सत् और असत् दोनों ही आपकी उपाधि सी प्रतीत होती हैं। अस्तु, जिसकी सत् और असत् उपाधियाँ हों उसे सत् और असत् से पृथक् होना ही चाहिये। वस्तुतः आप ही सत् और असत् से परे अविनाशी परम ब्रह्म हैं।[1]

हे अनन्तरूप भगवन्, आप ही आदि देव हैं। क्योंकि सब के श्रेष्ठ आश्रय हैं। समस्त जानने योग्य पदार्थों के आप ही पूर्ण जानकार हैं। साथ ही जो कुछ भी जानने योग्य है वह भी आप ही हैं क्योंकि, आपको जानना ही समस्त जगत को जानना है। जैसे समुद्र को जान लिया तो समुद्र के जल की समस्त बूँदों को भी जान लिया, वैसे ही आपको जान लिया तो जगत के समस्त रूपों को ही जान लिया समझना चाहिये। क्योंकि समस्त जगत आपका ही विस्तार है। सत्य ही, आप ही परमधाम हैं, यापी आप से बढ़ कर जीवों को अन्य आश्रयदाता स्थान है ही नहीं। अतः निस्सन्देह आप ही श्रेष्ठधाम हैं। समस्त विश्व आप से ही व्याप्त हैं।[2]

हे भगवन्, आप ही वायु, यम, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा, प्रजापति, ब्रह्मा, और ब्रह्मा के आदि कारण, अर्थात् ब्रह्मा के भी पिता सब आप ही हैं। आपको मैं सहस्रबार नमस्कार करता हूँ। फिर भी बार-बार नमस्कार करता हूँ, अर्थात् मैं अत्यन्त श्रद्धान्वित होकर

---

१. कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन्
गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे।
अनन्त देवेश जगन्निवास
त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत्।।३७।।

२. त्वमादिदेवः पुरुषः पुराण -
स्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम
त्वया ततं विश्वमनन्तरूप।।३८।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आपको नमस्कार करते-करते तृप्त ही नहीं होता।[1]

हे भगवन्, मैं देख रहा हूँ कि आपके सभी ओर को मुख हैं, अतः आपको आगे से, पीछे से, सभी ओर से नमस्कार है, अर्थात् सभी दिशाओं से आपको नमस्कार है। आपके पराक्रम का अन्त ही नहीं है। वस्तुतः आप महान् पराक्रमी हैं और आप महान् ही सामर्थ्य वाले हैं। आप अपने एक ही रूप से जगत के समस्त रूपों को व्याप्त किये हुए हैं अतः आप सर्वरूप हैं।[2]

'हे भगवन् मुझे आपके इस प्रभाव का पहिले पता नहीं था मैं तो आपको अपना सखा ही मानता था। अतः मैंने प्रेम से अथवा असावधानी से भी आपको भगवान् न कहा। कभी हे कृष्ण, कभी हे यादव, अथवा कभी हे सखा, इस प्रकार आपको बराबरी के से नामों से सम्बोधन करने की अत्यधिक ढीठता की है। इतना ही नहीं वरन् हे अच्युत, हे भगवन्, हे अमित प्रभाव वाले असीम परमेश्वर, मैंने चलते, सोते, उठते, बैठते, खाते, पीते, अकेले में या उन अपनी मित्र-मण्डली के साथ में, हँसी में जो-जो भी आपके तिरस्कार

---

१. वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशांकः
प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः
पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते।।३९।।

२. नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते
नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं
सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः ।।४०।।

वस्तुतः भावातिरेक के कारण भगवान् के विश्वरूप को अपनी कल्पना में देखकर अब अर्जुन यह सोचने लगा कि अबतक तो वह श्रीकृष्ण को, केवल अपना साथी, नातेदार, मार्गदर्शक आदि ही मानता था किन्तु, सत्य ही, श्रीकृष्ण तो साक्षात् विराट् रूप भगवान् हैं। अतः श्रीकृष्ण भगवान् की महिमा के सम्बन्ध में अपनी अज्ञानता के कारण वह उनका यथोचित सत्कार नहीं कर सका है। अस्तु, उसे भगवान् से क्षमा मांगना चाहिये। ऐसी विचाराधारा आते ही वह मन ही मन भगवान् से निवेदन करता है कि -

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

किये हैं उनकी आपसे मैं क्षमा याचना करता हूँ।[1]

क्योंकि, आपही इस जड़ और चैतन्य जगत के पिता के सदृश हैं और आप ही अत्यन्त पूजनीय गुरु से भी बड़े गुरु हैं, अर्थात् जो गुरुजन जगत के प्राणियों का मार्गदर्शन करते हैं आप उन गुरुओं का भी मार्गदर्शन करते हैं। हे अतिशय प्रभाव वाले भगवन्, आपके समान प्रभाव वाला भी इस जगत में और कोई दूसरा नहीं है फिर आपसे अधिक प्रभाव वाला तो हो ही कैसे सकता है?[2]

अतएव, हे प्रभो, मैं शरीर को भली प्रकार झुकाकर, यानी साष्टांग प्रणाम करके आप वन्दनीय ईश्वर को प्रसन्न होने की प्रार्थना करता हूँ। हे देव, जैसे पिता अपने पुत्र के, मित्र अपने मित्र के, पति जैसे अपनी प्रिय स्त्री के अपराधों को सहन कर लेता है वैसे ही आप जो मेरे प्रिय, पूजनीय हैं आपको भी अपने प्रिय, यानी मेरे सब अपराधों को सहन कर लेना उचित है।[3]

वस्तुतः इस समय जैसा आपका रूप मैंने देखा है वैसा पहिले कभी नहीं देखा था। निस्सन्देह, मैं आपके इस अद्भुत विराट् रूप को देखकर हर्षित हो रहा हूँ। किन्तु, साथ ही साथ उसकी भयंकरता

---

१. सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं
हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।
अजानता महिमानं तवेदं
मया प्रमादात्प्रणयेन वापि।।४१।।
यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि
विहारशय्यासनभोजनेषु
एकोऽथवाप्युच्यत तत्समक्षं
तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम्।।४२।।

२. पितासि लोकस्य चराचरस्य
त्वमस्य पूज्यश्चं गुरुर्गरीयान्।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो
लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव।।४३।।

३. तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं
प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम्।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः
प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम्।।४४।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

को देखकर कर भय से मेरा मन अत्यन्त व्याकुल हो रहा है। इसलिये हे देवेश, हे जगत के आश्रय स्थान, आप मुझ पर कृपा कीजिये और वही अपना विश्वरूप होने से पूर्व का देवरूप (चतुर्भुजरूप) दिखा कर अनुगृहीत कीजिये।[1]

मैं पूर्व जैसा ही आपको मुकुटधारी, हाथों में गदा और चक्र लिये हुए देखना चाहता हूँ। अतः हे विश्वरूप भगवान्, हे सहस्रभुजाओं वाले भगवान्, आप चतुर्भुज रूप हो जाईये।[2]

* देखो अर्जुन, चूँकि तूने मेरा विश्वरूप देखा है, अतः यह प्रत्यक्ष प्रमाण है कि मैं तुझसे प्रसन्न हूँ। क्योंकि तूने मेरा अपना परम तेजोमय अनन्तरूप, यानी जिसका ओर छोर ही न दिखे, देखा है। यह रूप विश्व का आदि कारण है जो तेरे सत्यसंकल्पानुसार ही मैंने दिखलाया है। क्योंकि, मैं सत्य-संकल्प हूँ। मेरा स्वभाव है कि जो जैसा अपने मन में दृढ़ संकल्प करता है मैं वैसा ही उसके दृढ़ संकल्प को साकार कर देता हूँ। वस्तुतः मेरे इस प्रकार संकल्प को साकार कर देने के स्वभाव को ही यह कहा जाता है कि यह मेरे आत्मयोग का प्रभाव है। इससे पूर्व किसी ने भी ऐसा रूप देखने का ऐसा दृढ़ संकल्प नहीं किया। सत्य ही, यह मेरा विश्वरूप किसी ने भी तुझसे पहिले नहीं देखा है।[3]

---

१. अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा
भयेन च प्रव्यथितं मनो मे।
तदेव मे दर्शय देव रूपं
प्रसीद देवेश जगन्निवास ।।४५।।

२. किरीटिनं गदिनं चक्रहस्त -
मिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव।
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन
सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते ।।४६।।

* अर्जुन के मन में जैसे ही अपने इष्ट चतुर्भुज भगवान् को देखने की कल्पना उठी कि उसे ऐसा लगा मानो कि विश्वरूप भगवान् उसे इस प्रकार समाधान करते हुए उत्तर दे रहे हैं कि -

३. श्रीभगवानुवाच : मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं
रूपं परं दर्शितमात्मयोगात्।
तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं
यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम् ।।४७।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

* देखो अर्जुन, तू कुरुकुल का श्रेष्ठ वीर है। जो तूने मेरा विश्व-रूप देखा है यह रूप न तो वेद पढ़कर कर्मकाण्ड से, न यज्ञ करने से, न स्वाध्याय से, न दान देने से, न अन्य फल देने वाली क्रियाओं से और न उग्र तपों के तपने से इस मनुष्यलोक में देखा जा सकता है। क्योंकि, इन सब उपासनाओं को करने वाले अपनी समृद्धि (अपनी सद्‌गति) ही चाहते हैं। उन्हें विश्वरूप से प्रयोजन ही नहीं यानी 'वासुदेवं सर्वं इदं' की भावना ही उनमें नहीं होती। अस्तु, तेरे अतिरिक्त, अन्य उपासक (जो मेरे अनन्यभक्त नहीं हैं और अभी अपनेपन में अनुरक्त हैं) मुझे देखने में असमर्थ हैं।'

× अस्तु, देखो अर्जुन, न तो तुझे इस विश्वरूप की भयंकरता को देखकर व्याकुल होना चाहिये और न इसके अद्भुत भाव को देखकर तुझमें मूढ़भाव आना चाहिये, यानी तुझे स्थिरबुद्धि रहना चाहिये। अतः भय और विमूढ़भाव को त्यागकर प्रसन्नचित्त होकर, यानी शान्तचित्त होकर तू पुनः मेरे उसी रूप यानी चतुर्भुज रूप

---

* चूँकि अर्जुन ने अपने मन में ऐसा संकल्प पहिले कभी नहीं किया था, अतः ऐसी भगवान् की झाँकी उसने पहिले कभी नहीं देखी थी। अस्तु, विश्वरूप की महिमा को वेदव्यासजी भगवान् के श्रीमुख से ही व्यक्त करा रहे हैं कि -

१. न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानै -
र्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रै :
एवंरूपः शक्य अहं नृलोके
द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर ।।४८।।

* वस्तुतः प्रकृति का यह गुण है कि एक व्यक्ति की मानसिक विचारधारा दूसरे व्यक्ति की विचारधारा से ठीक ज्यों की त्यों मिलती ही नहीं है कुछ न कुछ अन्तर अवश्य रहता है। यह सभी लोगों का प्रायः अनुभूत विषय है। अतः अर्जुन ने अपनी मानसिक विचारधारा से जो भगवान् का रूप देखा था ठीक वैसा का वैसा रूप तो कोई देख ही नहीं सकता, चाहे कोई कितना भी प्रयत्न करले। यहाँ तक कि अर्जुन भी यदि फिर वह रूप देखना चाहे तो वह भी अब एकदम ठीक वैसा रूप नहीं देख सकता।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

को देख जिसके दर्शन करने का तू सदा से अभ्यासी है।[1]

* हे राजन् श्रीकृष्ण (वासुदेव) भगवान् ने अर्जुन को वैसा कह कर फिर पूर्व जैसा ही अपना चतुर्भुज रूप उसे दिखाया और फिर महात्मा भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने सौम्य मानवीय रूप से भयभीत हुए अर्जुन को धैर्य बँधाया।[2]

---

१. मा ते व्यथा मा च विमूढ़भावो, दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ्ममेदम्।
व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं, तदेव में रूपमिदं प्रपश्य।।४६।।

* अर्जुन के मन में अपने इष्ट के दर्शन की प्रबल अभिलाषा होते ही विश्वरूप भगवान् की विचार तरंगें, नीचे के स्तर पर चली जाती हैं और उनके ऊपर उसके पूर्व परिचित इष्ट चतुर्भुज भगवान् के रूप की तरंगें उभरने लगती हैं। चूँकि अर्जुन अपने मन में विश्वरूप भगवान् के दर्शन के स्थान पर चतुर्भुज रूप का दर्शन कैसे करने लगा है व्यक्त नहीं कर सकता, अतः वेदव्यासजी संजय से धृतराष्ट्र के प्रति उक्त परिवर्तन की घटना का उल्लेख करा रहे हैं।

संजय कहता है कि विश्वरूप भगवान् ने जैसे ही अर्जुन को शांतिपूर्वक भगवान् के चतुर्भुज रूप देखने को कहा, वैसे ही अर्जुन के मानस पटल से विश्वरूप ओझल होगया और उसे फिर वैसा ही चतुर्भुज रूप दिखने लगा जैसा कि विश्वरूप दर्शन के हेतु उसने अपने चतुर्भुज भगवान् से पहिले प्रार्थना की थी तब वह उनका रूप देख रहा था। फिर जैसे ही अर्जुन यह कल्पना करता है कि श्रीकृष्ण भगवान् के मानवशरीर के अन्तर्गत चतुर्भुज भगवान् विराजमान हैं, वैसे ही वह अपने मार्गदर्शक भगवान् श्रीकृष्ण के सुन्दर रूप का स्मरण करने लगता है। अतः उसे अब ऐसा लगता है कि न तो विश्वरूप भगवान् हैं और न चतुर्भुज भगवान् ही, बल्कि स्वयं महात्मा श्रीकृष्ण भगवान् अपने स्वाभाविक मनमोहक सौम्य रूप में विद्यमान हैं और वे भयभीत उसको, यानी अर्जुन को सान्त्वना दे रहे हैं। अस्तु, संजय कहता है कि -

२. संजय उवाचः इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा
स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः।
आश्वासयामास च भीतमेनं
भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा ।।५०।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

*जब अर्जुन भगवान् के वचनों से सावधान हो जाता है तब वेदव्यासजी पुनः पूर्ववत् अर्जुन से कहला रहे हैं कि वह अब उनके मानवरूप को देख कर शान्त एवं स्वस्थ हो गया है। अस्तु, अर्जुन कहता है कि –

* हे जनार्दन, आपके इस सौम्य मनुष्य के रूप को देख कर मैं शान्त चित्त हो गया हूँ और मेरी प्रकृति पूर्ववत् स्वस्थ हो गई है।[१]

× तब वेदव्यासजी श्रीकृष्ण भगवान् के श्रीमुख से ही अपने विश्वरूप के दर्शन की दुर्लभता आदि के विषय में कहला रहे हैं। अस्तु, भगवान् कहते हैं कि –

× हे अर्जुन, जो तूने मेरा विश्वरूप दर्शन, तत्व से किया है वह बड़ी कठिनाई से ही किया जा सकता है। ऐसा भाव कदाचित ही कभी किसी को आता है। देवता भी इस रूप को देखने की नित्य अभिलाषा करते रहते हैं।[२]

वस्तुतः न तो वेदों में लिखित फल प्राप्ति कराने वाले कर्मकाण्डों से और न उग्र तपों से और न ही दान आदि की अथवा यज्ञादि की क्रियाओं के करने से जैसा विश्वरूप तूने मेरा देखा है वैसा रूप देखा जा सकता है।[३] क्योंकि, ये सब क्रियायें व्यक्ति विशेष की समृद्धि के हेतु होती हैं, शुद्ध भगवान् के निमित्त नहीं। अतः, इनमें भगवान् की निर्मल भक्ति का पूरा भाव नहीं होता।

सत्य ही, मेरे विश्वरूप का दर्शन तो उसे ही हो सकता है जो मेरे विश्वरूप का ही अनन्य भक्त हो। अतः हे अर्जुन, केवल अनन्यभक्ति से ही मुझे विश्वरूप में देखा जाना सम्भव है। इतना ही नहीं वरन् हे परम तपस्वी अर्जुन, जो व्यक्ति मेरे अतिरिक्त और किसी का भी चिन्तन नहीं करता वह व्यक्ति मुझे तत्व से जान सकता है कि मेरा स्वरूप क्या है। और मुझे, निर्लेप विश्व की

---

१. अर्जुन उवाच : दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन।
इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः।।५१।।

२. श्रीभगवानुवाचः सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम।
देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकाङ्क्षिणः।।५२।।

३. नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा।।५३।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आत्मा के रूप में भी, बुद्धि से देख सकता है, अर्थात् साक्षात्कार भी कर सकता है और प्राप्त भी कर सकता है, यानी स्वयं भी अपनी आत्मा को विश्व की आत्मा में अविभाजित रूप से (एकीभाव से) अनुभव कर सकता है। इस प्रकार समष्टि रूप में समस्त आत्माओं को, अपनी एक आत्मा ही है, ऐसा अनुभव करने को ही, वस्तुतः मुझ में, यानी भगवान् के विश्वरूप में तत्व से प्रवेश करना कहते हैं।१

अस्तु, हे अर्जुन, वह व्यक्ति जो मेरा अनन्य भक्त है वही मुझे प्राप्त कर सकता है। हाँ, मेरा अनन्य भक्त से अभिप्राय उस व्यक्ति विशेष से है जो समस्त कर्म मेरे लिये ही करता है, यानी वह अपने को व अपने परिवार को एवं उन व्यक्तियों को भी जिनके कर्म उसे स्वधर्म-पालन के रूप में करने पड़ते हैं, उन सब को शुद्ध भाव से परमात्मा के अंग मानता है। और जो काम उससे होता है वह भी उसे ऐसा ही अनुभव होता है कि वह परमात्मा का ही काम हो रहा है। इस प्रकार अनन्य भक्त, परमात्मा के लिये ही स्वधर्म-पालनरूप कर्म करता है। परमात्मा का ही एक अंग बन कर, यानी अपने को अनुभव कर उनकी शरण में ऐसे रहता है जैसे कि शरीर का एक अवयव, समस्त शरीर का एक अंग बना हुआ रहता है। अस्तु, वह परमात्मा के ही परायण रहता है। वह परमात्मा के ही एक-एक अंग के सदृश होता है। चूंकि वह पूर्ण परमात्मा के स्वरूप का एक अंग मात्र है अतः वह परमात्मा का भक्त कहलाता है। क्योंकि, उससे प्रतिक्षण परमात्मा के लिये ही काम हुआ करता है। उसका उपयोग परमात्मा ही करता है, और कोई नहीं। वस्तुतः उसकी दृष्टि से जगत के समस्त प्राणी परमात्मा के ही शरीर के विभिन्न भाग हैं। अतएव, उसको समस्त प्राणी पृथक्-पृथक् होते हुए भी परमात्मा से पृथक् भान नहीं होते। हाँ, आँख से देखने में वे पृथक्-पृथक् अवश्य दिखाई देते हैं, किन्तु तत्व से उसे समस्त प्राणी "वासुदेवः सर्वं इदम्" ही दिखते हैं। चूँकि उसकी दृष्टि से कोई जीव उससे पृथक् ही नहीं है, अतः उसका पृथक् रूप से उसे संग ही नहीं होता।

---

१. भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप।।५४।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अस्तु, वह व्यक्ति सर्व प्रकार के संग से रहित है। चूँकि उसे समस्त प्राणियों में परमात्मा का ही दर्शन होता रहा है, अतः उसकी विचारधारा से प्राणी का पृथक् अस्तित्व ही नहीं है। जब प्राणी का पृथक् अस्तित्व ही नहीं तो किसी प्राणी से उसका वैर हो ही नहीं सकता। क्योंकि वैर भाव तो दूसरे पर ही प्रकट किया जाता है। स्वयं का स्वयं से वैर हो ही नहीं सकता। जब दूसरा है ही नहीं तब वैरभाव भी नहीं। अस्तु, वह व्यक्ति सब जीवों से वैरभाव से रहित होता है।

वस्तुतः हे पाण्डव (अर्जुन) वही व्यक्ति भगवान् का भक्त है और वही व्यक्ति ही भगवान् को प्राप्त किया करता है जो भगवान् के लिये कर्म करे, भगवान् के ही परायण हो, भगवान् का ही भक्त हो, संग रहित हो, तथा किसी से भी उसका वैर न हो अर्थात् जो सब को प्रेम करता हो।[१]

ऊँ शम्

---

१. मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव।।५५।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ॐ

बारहवाँ अध्याय

भक्तियोग

अर्थात्

विश्वरूप परमात्म–तत्व (भगवान्)
के भक्त होने की
विधि का प्रकरण।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भक्तियोग

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः।।२।।

मेरी सम्मति में वे भक्त, उत्तम हैं, जो मुझमें (विश्वरूप परमात्म-तत्व में) मन लगा कर, अर्थात् अपने स्वधर्म-पालन को मेरा ही काम समझ कर और प्रत्येक प्राणी में मेरी सत्ता का ही अनुभव करते हुए अत्यन्त श्रद्धा से नित्य कर्त्तव्य-परायण रहते हैं।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

१२

ग्यारहवे अध्याय में विभूतियों से युक्त परमात्म-तत्व का साक्षात्कार अर्जुन ने किस प्रकार किया है एवं परमात्म-तत्व के साक्षात्कार करने का एकमात्र साधन भगवान् की अनन्य भक्ति ही है यह पाठक पढ़ चुके हैं। अब बारहवे अध्याय में भगवान् अनन्य भक्ति के प्रकरण को और अधिक स्पष्ट करने की कृपा करेंगे, जिससे साधक भली भाँति समझ सकेंगे कि अनन्य भक्ति का वास्तविक रूप क्या है और अनन्य भक्ति का भाव कैसे प्रदर्शित किया जा सकता है तथा अनन्य भक्त के क्या-क्या लक्षण होते हैं।

अन्त में जो भक्त उनके परायण होकर उनके निमित्त कर्म करता है, वह उन्हें (भगवान् को) अत्यन्त प्रिय है, यह कहते हुये भगवान् अध्याय की समाप्ति कर देते हैं।

चूँकि भक्ति के द्वारा ही भगवान् की प्राप्ति होती है और भक्ति का ही सविस्तार वर्णन इस अध्याय में किया गया है, अतः यह अध्याय गीता की दृष्टि से भक्तों का सर्वस्व कहा जाता है। यहाँ तक कि सन्त लोग इस अध्याय को तो कम से कम मुखाग्र (कंठस्थ) करने तक का परामर्श दिया करते हैं। अस्तु, अब पाठक इस अध्याय में वर्णित भक्ति के रहस्य को भगवान् के ही श्रीमुख से श्रवण करें और मनन करें।

जब अर्जुन को भगवान् का यह उपदेश स्मरण हो आया था कि "जो भक्त, आसक्ति रहित होकर, समस्त प्राणियों में प्रेम भाव रखते हुए भगवान् के परायण होकर भगवान् के लिये ही स्वधर्म-पालन करता है, वह भक्त भगवान् को ही प्राप्त हो जाता है" तब तत्काल ही उसे यह स्मरण हो आया था कि भगवान् के उपदेश के उपरान्त उसने उनसे यह प्रश्न पूछा था कि " हे भगवन्! आपको अपने सगुण उपासना करने वाले भक्त और निराकार की उपासना करने वाले भक्तों में कौन से भक्त अधिक अच्छे लगते हैं? उस समय भगवान् ने कृपा करके अत्यन्त सुन्दरता से उसकी जिज्ञासा का समाधान करके उसका मार्गदर्शन किया था। अतः अब वेदव्यासजी

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अर्जुन के मुख से ही उसका प्रश्न कहलवाते हैं। अस्तु, अर्जुन प्रश्न करता है कि हे भगवन्। आपकी उपासना करने वाले भक्त दो प्रकार के प्रायः देखे जाते हैं। एक तो वे भक्त हैं जो आपकी बताई हुई विधि से, यानी आसक्ति रहित होकर, समस्त प्राणियों में वैरभाव न रखते हुए, अर्थात् जीवमात्र में प्रेम भाव रखते हुए विश्व में व्याप्त आपके (सगुण) स्वरूप की शरण में रहकर आपके लिये ही निरन्तर स्वधर्म-पालन का कर्म करते हैं और दूसरे प्रकार के वे भक्त हैं जो आपके उस अविनाशी परमात्म-स्वरूप की उपासना करते हैं जिसका कि वर्णन ही नहीं किया जा सकता है, अर्थात् जो निराकार एवं अव्यक्त है। इन दोनों प्रकार के भक्तों में आपकी सम्मति से हे भगवन्, अति उत्तम उपासक कौन है, यानी आपसे मिलने की विधि कौन से भक्त की श्रेष्ठतर है?[1] अब वेदव्यासजी अर्जुन की जिज्ञासा तृप्त कराने के लिये भगवान् के श्रीमुख से ही उसका समाधान करवाते हैं। अस्तु, भगवान् कहते हैं कि-

भगवान् के मत से सगुण भक्त की श्रेष्ठता

देखो अर्जुन, सगुण ब्रह्म के उपासक और निराकार अव्यक्त ब्रह्म के उपासक दोनों हैं तो मेरे भक्त ही। दोनों का लक्ष्य भी एक ही है। दोनों मुझको यानी भगवान् को ही प्राप्त करना चाहते हैं। अस्तु, अब तू यह समझले कि इन दोनों भक्तों के द्वारा अपनाई गई भक्ति करने की शैली कौनसी श्रेष्ठतर है? श्रेष्ठतर भक्ति की शैली जानने के लिये अब मैं एक उदाहरण देकर तुझे समझाता हूँ जिससे तू स्वयं ही जान लेगा कि भक्ति करने की कौनसी शैली अधिक अच्छी है। मानले कि एक महात्माजी सत्संग के हेतु एक आश्रम का संचालन करते हैं। उनके दो शिष्य हैं। दोनो ही सद्गृहस्थ हैं। दोनों निष्ठावान् हैं। दोनों ही लगन के पक्के हैं और दोनों ही भगवान् को प्राप्त करना चाहते हैं। उनमें से एक सगुण उपासक भक्त है और दूसरा निराकार अव्यक्त का उपासक है।

---

१. अर्जुन उवाचः एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः।।१।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

देखो अर्जुन, जो भक्त सगुण उपासक है, वह स्पष्ट जानता है कि उसका स्थूल शरीर भगवान् का है और सूक्ष्म शरीर भी, यानी उसके मस्तिष्क में उत्पन्न होने वाले त्रिगुणात्मक विचार भी भगवान् के हैं। साथ ही वह यह भी जानता है कि आत्मा साक्षी है और उसके द्वारा किये जाने वाले समस्त कर्मों को (जिनको कि उसका सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर से नित्य कराता है) जानता है। उससे कोई बात छिपी नहीं है। इतना ही नहीं वरन् वह भक्त अपने परिवार के व्यक्तियों को तथा जिन-जिन व्यक्तियों के सम्पर्क मे वह आता है उन सब को मेरे (भगवान् के) भक्त ही मानता है। क्योंकि, उसकी दृष्टि में वे मेरी, यानी भगवान् की सत्ता से ही त्रिगुणात्मक माया का कार्य करने वैसे ही आये हैं, जैसे कि वह आया है। हो सकता है कि दूसरे लोगों को उसके जैसा ज्ञान न भी हो किन्तु, उसे भ्रम नहीं है। इस विवेचन से हे अर्जुन, तू स्पष्ट समझ गया होगा कि सगुण उपासक भक्त वह होता है जो गुणों के सहित यानी त्रिगुणात्मक विचारधारा के सहित साक्षी रूप में आत्मा को प्रत्येक स्थूल शरीर में व्याप्त हुई अनुभव करता है।

सगुण ब्रह्म के उपासक की शैली

ऐसा भक्त प्रत्येक व्यक्ति के प्रति, परस्पर विचारों की विषमता होने पर भी, समभाव से आचरण करता है। ऐसा भक्त गृहस्थी के समस्त कार्यों को भगवान् के कार्य समझता है। क्योंकि उसकी दृष्टि में वे कार्य भगवान् की सत्ता से ही सम्पन्न होते हैं। इस प्रकार स्वधर्म पालन-रूप गृहकार्य के द्वारा भगवान् के प्रति भक्तिभाव प्रकट करता हैं। ऐसा नहीं है कि यह भक्त केवल गृहकार्य में ही जुटा रहता है। बल्कि, वह अनासक्ति भाव से आवश्यकतानुसार उचित गृहकार्य संपादन करके अपने गुरुजी यानी महात्माजी के (जो आश्रम का संचालन करते है) दर्शन करता है, उनकी सेवा सुश्रूषा करता है। साथ ही उन महात्माजी द्वारा संचालित आश्रम की व्यवस्था हेतु यथाशक्ति तन, मन और धन से सेवा भी करता है और इस सेवा को भी वह भगवान् की सेवा ही मानता है। इतना ही नहीं वरन् वह भक्त अपने गृह में भी भगवान् के विग्रह यानी मूर्ति की पूजा, अर्चना भजन, कीर्त्तन एवं आरती आदि एक निश्चित समय पर दैनिक करता है। पर्वों के अवसर पर विशेष उत्सव भी मनाता है। हाँ, इस प्रकार के पूजन को भी वह भगवान् के निमित्त किये जाने वाले

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अन्य कौटुम्बिक कार्यों में से ही एक काम मानता है। उसकी दृष्टि से जैसे बच्चों को शिक्षित बनाना उसका कर्तव्य है, वैसे ही समस्त परिवार में भगवान् के प्रति अभिरुचि उत्पन्न कराने को ही भगवान् की मूर्ति की पूजा का व्यवधान है। निस्सन्देह, यह सगुण उपासक भक्त अपने व्यक्तिगत काम, कौटुम्बिक कांम एवं महात्मा जी तथा उनके आश्रम के कामों द्वारा ही भगवान् की भक्ति प्रदर्शित कर रहा है।

ऐसा भक्त स्वयं अपने जीवन को कल्याणमय बनाता है, और साथ ही परिवार के व्यक्तियों की समुचित सहायता करके उनके मार्ग को भी सुखद बनाने में योग देता है। इसके अतिरिक्त, सत्य ही, वह महात्माजी की सेवा के माध्यम से गुरुभक्ति का भी बीजारोपण करता जाता है और आश्रम के संचालन में उचित योगदान द्वारा परोपकार के संस्कार के वातावरण का भी निर्माण करता है।

अस्तु, सगुण उपासना (भक्ति) वह उपासना (भक्ति) है जिसके प्रतिपादन करने से मानवीय जीवन का प्रत्येक पहलू समुचित रूपेण विकसित होकर उत्तरोत्तर पूर्णता को प्राप्त होता जाता है। इस प्रकार पूर्णता को प्राप्त हो जाना ही वस्तुतः भगवान् को प्राप्त कर लेना है। सत्य ही, भगवान् के निमित्त कर्त्तव्य-पालन करने से अहंभाव क्रम-क्रम से क्षीण होता जाता है। जब अहंभाव समूल प्रभाव-हीन हो जाता है तब तू यूँ अच्छी तरह से समझ ले कि भक्त-भाव और भगवान्-भाव दो भाव पृथक्-पृथक् नहीं रहते। भक्त-भाव लुप्त होकर भगवान्-भाव ही स्पष्ट झलकने लगता है। इसी अवस्था का नाम जीवनमुक्त अवस्था है। ऐसा जीवनमुक्त भवत संसार में रहते हुए भी संसार से मुक्त है, जैसे कि कमल पत्र पानी में रहते हुए भी पानी से मुक्त है। ऐसा भक्त अपनी जीवनलीला के उपरान्त वैष्णवी शक्ति के रूप में संसार का हित करने को ही समय-समय पर जन्म लेता है, और कार्य के अन्त होते ही पुनः सच्चिदानन्द से प्रभावित वैष्णवी शक्ति में ही लीन हो जाता है।

हाँ, अब तू निराकार अव्यक्त की उपासना करने वाले भक्त के आचरण का भी सूक्ष्मदृष्टि से अध्ययन करले, यानी उसकी

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

शैली को भी समझले तभी तू इन दोनों भक्तों की शैलियों में क्या अन्तर है ठीक-ठीक समझ लेगा।

देखो अर्जुन, निराकार, अव्यक्त ब्रह्म के उपासक की शैली सगुण ब्रह्म के उपासक की शैली से भिन्न होती है।

निराकार अव्यक्त ब्रह्म के उपासक की शैली

निराकार अव्यक्त ब्रह्म का उपासक भक्त अपने स्थूल शरीर को अपने से पृथक् एवं जड़ मानता है और उससे आसक्ति हटाने का अभ्यास करता है। साथ ही अपने त्रिगुणात्मक सूक्ष्म शरीर को "विकारी माया का रूप" समझने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार वह न तो अपने स्थूल शरीर के आरोग्य पर और न अपने सूक्ष्म शरीर के विकास पर ही ध्यान देता है। उसकी दृष्टि में निर्लिप्त, निराकार, अविनाशी एवं अव्यक्त, आत्मा ही सब कुछ है। अस्तु, यह भक्त सब ओर से चित्तवृत्ति को हटाकर अव्यक्त आत्म-स्वरूप के दर्शन करने के अभ्यास में रत रहता है। किसी ने कुछ भी भोजन करा दिया तो ठीक है और भोजन नहीं कराया तो भूखे ही रह जाने का अभ्यास करता है। ऐसे ही सर्दी, गर्मी, वर्षा सब के आघात सहता रहता है। निन्दा, स्तुति पर ध्यान नहीं देता है। उसका लक्ष्य केवल आत्म-चिन्तन मात्र होता है। न तो वह अपना व्यक्तिगत आवश्यक जीवन निर्वाह का काम करता है और न परिवार का पालन करता है। उसके घर वालों में से कोई उसे परमहंस कहता है तो कोई उसे पागल। कोई-कोई उसको परिवार पर बोझ समझते हैं क्योंकि, जिस परिवार का उससे सम्बन्ध होता है उसको उसके भोजन, वस्त्र आदि का प्रबन्ध तो कम से कम दुनियाँ के दिखाने को करना ही पड़ता है। यदि वह भक्त अपने गुरुजी यानी महात्माजी के आश्रम में पहुँच जाता है तो वहाँ वह एक स्थान पर अपना आसन जमा लेता है और आत्म-चिन्तन का अभ्यास करता रहता है। महात्माजी स्वयं को ही उसकी देख-रेख की व्यवस्था करवानी पड़ती है। उसे उनके आश्रम से कोई प्रयोजन नहीं। इस प्रकार का जीवन व्यतीत करना देहधारी को बहुत अधिक कष्टदायी प्रतीत होता है। प्रायः कष्टों की प्रचुरता के कारण भक्त के पथ-भ्रष्ट होने का भय भी रहता है और कभी-कभी तो आत्मानुराग की अपेक्षाकृत साधक पागलपन जैसे आचरण करने लगता है। हाँ, अनेक जन्मों के अभ्यास के बाद यदि

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उस भक्त के पुनः जन्म लेकर पूर्व जन्मों में किये हुए अभ्यास का ही आरम्भ किया हो तो सम्भवतः वह सिद्ध होकर आत्मरूप होने का सौभाग्य भले ही प्राप्त करले अन्यथा सिद्ध होना बहुत कठिन है। इस प्रकार अनेक प्रकार के कष्ट सहन कर ऐसा भक्त स्वयं अकेला अपना ही कठिनता से उद्धार कर पाता है। वह अपने आचरण से न तो अपने परिवार का मार्गदर्शन कर सकता है और न वह परोपकारी बन कर जगत का ही हित करता है। साथ ही उसे स्वयं भी नाना प्रकार के कष्ट झेलना पड़ते हैं। यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि यह भक्त भी अपनी कठोर साधना के उपरान्त जीवनमुक्त होकर वैष्णवी शक्ति में लीन हो जाता है।

अस्तु, विवेचन से हे अर्जुन, अब तुझे स्पष्ट हो गया होगा कि सगुणब्रह्म के उपासक और निराकार, अव्यक्त अविनाशी ब्रह्म के उपासक की शैलियों में कितनी भिन्नता है। हाँ, इतना अवश्य है कि दोनों भक्तों के लक्ष्य में कोई भिन्नता नहीं। अतः अब तू उनके लक्ष्य में कैसे समता है इस तथ्य को भी जान ले।

निराकार अव्यक्त ब्रह्म और सगुण ब्रह्म के उपासकों के लक्ष्य में समानता

देखो अर्जुन, वस्तुतः निराकार अव्यक्त ब्रह्म की उपासना के भक्तों में और सगुणब्रह्म की उपासना के भक्तों में लक्ष्य की दृष्टि से कोई अन्तर नहीं है। यह यथार्थ है। वस्तुतः दोनों ही भक्त जीवनमुक्त होकर वैष्णवीशक्ति में लीन हो जाते हैं क्योंकि जब-जब वैष्णवीशक्ति के बृहत् भाग को जगत के हित के लिये जन्म लेना पड़ता है तब-तब निराकार अव्यक्त ब्रह्म का भक्त भी वैष्णवीशक्ति का जगत के हित में उपयोग करता है। सत्य ही, यह भक्त भी भगवान् के स्वरूप को तो ऐसा मानता ही है कि भगवान् सब जीवों के कल्याण में लगे हुए हैं। अतः आत्म-चिन्तन के समय यह भक्त भी प्राणीमात्र का अपने जैसा ही कल्याण चाहता है। अतएव उसका मानसिक भाव 'सर्वभूतहिते रतः' का तो रहता ही है।

अस्तु, लक्ष्य और परिणाम की दृष्टि से तो दोनों भक्त एक से ही हैं किन्तु, दोनों की भक्ति करने के ढंग केवल पृथक्-पृथक हैं। हाँ,

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इसमें सन्देह नहीं कि सगुणब्रह्म के उपासक भक्त की भक्ति करने का ढंग निराकार, अव्यक्त ब्रह्म की उपासना करने वाले भक्त की भक्ति के ढंग की अपेक्षाकृत अत्यन्त सरल, उपयोगी, अकष्टकर एवं अनुकरणीय है। अतः सगुणब्रह्म की उपासना यानी भक्ति, अव्यक्त ब्रह्म की उपासना यानी भक्ति से श्रेष्ठतर कहना सर्वथा उचित है।

अस्तु, मेरी सम्मति में वे भक्त उत्तम हैं जो मुझमें (विश्वरूप परमात्म-तत्व में) मन लगाकर, यानी अपने स्वधर्म-पालन को मेरा ही काम समझकर और प्रत्येक प्राणी में मेरी सत्ता का ही अनुभव करते हुए अत्यन्त श्रद्धा से नित्य कर्त्तव्यपरायण रहते हैं।[१]

किन्तु, जो निराकार अव्यक्त की उपासना करने वाले मेरे भक्त हैं, वे अपनी इन्द्रिय-समूह को भली प्रकार से नियंत्रण में रखकर, उस अविनाशी परमब्रह्म, आत्म-स्वरूप का चिन्तन करते रहते हैं जो अव्यक्त है यानी मन और बुद्धि से परे है। साथ ही जो जिह्वा से अवर्णनीय है एवं जो सर्वव्यापी है। जो सदा प्राणीमात्र में विभक्त सा होते हुए भी अखण्ड है और सदैव विद्यमान रहता है एवं जो अचल है यानी स्थिर है। ऐसे मेरे भक्त भी सब जीवों में समभाव रखकर उनके कल्याण की भावना में सदैव रत रहते है। यद्यपि ऐसे भक्त प्रत्यक्ष में तो स्थूल व सूक्ष्म शरीर से कुछ भी काम करते दृष्टिगोचर नहीं होते तथापि उनका मन मुझमें ही लगा होने से वे मुझको ही प्राप्त होते हैं।[२]

किन्तु, मेरे अव्यक्त स्वरूप में मन लगाकर मुझमें अनुरक्त होने का अभ्यास करने वाले इन मेरे भक्तों की उपासना की विधि मुझे अत्यन्त कष्टकर प्रतीत होती है। क्योंकि अव्यक्त की उपासना के हेतु यह आवश्यक है कि देह का किंचित् भी ध्यान उपासकों को न हो अन्यथा उनकी उपासना में विक्षेप पड़ जाता है। जब कि अनुभव से यह प्रतीत होता है कि देहधारियों को देह के प्रति किंचित् भी

---

१. श्रीभगवानुवाचः मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः।।२।।

२. ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम्।।३।।
संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः।।४।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अहंभाव न आ पावें इस स्थिति में रहना अत्यन्त ही कठिन है।[1] अतएव अत्यन्त दुःख उठाकर कोई बिरला ही भक्त ऐसा निकलता है जो अव्यक्त गति में लीन होकर मुझे प्राप्त कर सके।

वस्तुतः मुझे प्राप्त होने वाले व्यक्तियों का जन्म-मरण नहीं होता यानी वे जीवनमुक्त हो जाते हैं। चूँकि जीवनमुक्त स्थिति प्राप्त करने के लिये ही व्यक्ति विशेष को भगवान् का यानी मेरा भक्त होना आवश्यक है और भक्त होने के लिये जब सुगम मार्ग ईश्वरार्पण बुद्धि से काम करने का उपलब्ध है तब कठिन मार्ग का अनुसरण करना अनावश्यक है। अस्तु, हे अर्जुन, अब तू इस तथ्य को भी भली प्रकार से समझले कि ईश्वरार्पण बुद्धि से कर्म करने वाले भगवान् के भक्त की जन्म-मरण से कैसे मुक्ति हो जाती है।

ईश्वरार्पण बुद्धि से कर्म करने वाले भक्त की जन्म-मरण से मुक्ति

देखो अर्जुन, जो भक्त अपने चित्त को इधर उधर नहीं भटकने देते केवल मेरे ही परायण होकर यानी मेरी ही शरण में रहकर अपने सम्पूर्ण कर्मों को करते हैं; चाहे वे कर्म व्यक्तिगत हों अथवा कौटुम्बिक, चाहे यज्ञ, पूजन, भजन आदि से सम्बन्ध रखते हों अथवा परोपकार के कार्य हों, सब को ही ऐसा समझ कर करते हैं कि उनके द्वारा किये जाने वाले सभी कार्य भगवान् के निमित्त ही हो रहे हैं; और साथ ही जो उन कर्मों के परिणाम को भगवान् पर ही छोड़ देते हैं यानी उनका सम्बन्ध भगवान् से ही है ऐसा मानते हैं, ऐसे मुझ में चित्त लगाये हुए भक्तों का, मैं शीघ्र ही, मृत्यु रूप संसार सागर से उद्धार कर देता हूँ। क्योंकि ईश्वरार्पण बुद्धि से कर्म करने वाले भक्तों में से 'अपने पन' का भाव शनैः शनैः कम होने लगता है। जब पूर्णतः अहंभाव का प्रभाव नहीं रहता तब उन भक्तों के निज के कोई कर्म ही नहीं रहते। सब कर्म भगवान् के ही हो जाते हैं। चूँकि कर्म के परिणाम को भोगने के लिये ही जन्म हुआ करता है और कर्म के अन्त होने पर मृत्यु हो जाया करती है, अतः जब ईश्वरार्पण बुद्धि से कर्म करने वाले

---

१. क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते।।५।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भक्तों के कर्म ही नहीं है तब उनका कर्म के फल भोगने को जन्म ही नहीं होगा। जब जन्म ही नहीं हुआ तब मृत्यु कहाँ से होगी? अस्तु, ईश्वरार्पण बुद्धि से कर्म करने वाले भगवान् के सगुण उपासक भक्त का मृत्यु रूप संसार-सागर से शीघ्र उद्धार हो जाता है।१

हे अर्जुन, अब तुझे यह जानने की उत्सुकता होगी कि प्रत्येक व्यक्ति जिस प्रकार सगुण उपासक अनन्य भक्त हो सकता है। अतः तू उस विधि को सुन।

सगुण उपासक अनन्य भक्त बनने की विधि

देखो अर्जुन, जो व्यक्ति सृष्टि के पालन करने वाले विष्णु भगवान् को प्राणिमात्र में व्याप्त देखता है, यानी अनुभव करता है, तथा भगवान् के अतिरिक्त और किसी में भी जिसकी भक्ति नहीं है वह व्यक्ति भगवान् का सगुण उपासक अनन्य भक्त कहा जाता है। ऐसे अनन्य भक्तों को उनकी सामर्थ्य के अनुसार चार भागों में विभक्त किया जा सकता है।

१. वे भक्त जो अपने को भगवान् का अविभाजित अंश मानते हैं।
२. वे भक्त जो अपने को भगवान् का अविभाजित अंश मानने का अभ्यास कर रहे हैं।
३. वे भक्त जो भगवान् के निमित्त कर्म करते हैं।
४. वे भक्त जो कर्म के परिणाम को भगवान् पर ही छोड़ देते हैं इन

भक्तों की जानकारी तुझे विस्तार से हो जावे इस दृष्टि से क्रम-क्रम से अब मैं इनके विषय में तुझे समझाऊँगा। तू ध्यान पूर्वक समझने का प्रयत्न करना।

---

१. ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते।।६।।
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि न-चिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्।।७।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

देखो अर्जुन, जो भक्त अपने को भगवान् का अविभाजित अंश मानता है, वह जगत को निज प्रभुमय देखता है। उसकी दृष्टि में सब कुछ वासुदेव ही वासुदेव है। वह व्यष्टि को समष्टि में लीन हुए देखता है। ऐसी अनन्य भक्ति जो व्यक्ति प्राप्त करना चाहता है उसको बुद्धि

भगवान् का अपने को अविभाजित अंश मानने वाला भक्त

से भी वैसा ही निर्णय करना चाहिये तभी मन का अनन्य भक्ति में अनुराग हो सकता है और वह निरन्तर भगवान् में विश्वास कर सकता है। क्योंकि, तूने अनुभव किया होगा कि प्रायः प्रत्येक व्यक्ति के मन में प्रतिक्षण कुछ न कुछ विचार आते ही रहते हैं। किन्तु, उन विचारों में से केवल उन्हीं विचारों को पूर्ण करने का व्यक्ति प्रयत्न करता है जिन्हें पूर्ण करने की अनुमति उसकी बुद्धि दे देती है। ऐसी स्थिति में उस व्यक्ति का मस्तिष्क उन विचारों में ही भ्रमण करता रहता है। सत्य ही, व्यक्ति मानसिक रूप में वहीं निवास करता है जहाँ रहने को उसकी बुद्धि निर्णय करके मन को आदेश दे देती है फिर शरीर से वह चाहे कहीं भी दिखाई दे। उसका मन अवश्य ही अपने लक्ष्य के चिन्तन में ही व्यस्त रहेगा जैसे एक अध्यापक एक सम्पन्न परिवार के छात्र को पारिश्रमिक लेकर अध्ययन कराता है (ट्यूशन करता है) यह छात्र एक सरकारी परीक्षा में बैठ रहा है। छात्र के पालक ने इस अध्यापक को यह वचन दिया है कि यदि छात्र प्रथम श्रेणी से परीक्षा उत्तीर्ण करेगा तो वह उसे पांच सौ रुपये पुरस्कार में और देगा।

यह अध्यापक अपनी विवाहयोग्य कन्या का आगामी वर्ष विवाह करने के लिये अत्यन्त आतुर है। उसकी आर्थिक स्थिति अधिक अच्छी नहीं है। ऐसी स्थिति में उसका लक्ष्य अधिक श्रम करके अर्थ उपार्जन करने का है। प्रारब्ध से उसे सम्पन्न परिवार के छात्र को पढ़ाने का काम मिल गया है। उसको प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण कराकर वह ऐसी बड़ी रकम प्राप्त कर सकता है जिससे उसकी कन्या के विवाह में उसका बहुत कुछ काम पूर्ण हो सकता है। अस्तु, उस अध्यापक को सोते, उठते, बैठते, चलते, पढ़ाते, सभी समय अपने छात्र को प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण कराने का विचार बना रहता है। यानी उस अध्यापक का मानसिक निवास निरन्तर अपने छात्र के प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण होने की विचारधारा में ही रत

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रहता है।

ठीक इसी प्रकार से वह भक्त जो भगवान् का अविभाजित अंश होना चाहता है उसे भी बुद्धि से निर्णय करके अपने मन को आदेश दे देना चाहिये कि विश्व में व्याप्त भगवान् का ही वह एक अविभाजित अंश है। निस्सन्देह, भक्त की बुद्धि निर्णय करके कि "भगवान् का वह एक अंश है" ऐसा कहने का आदेश तभी दे सकती है जब कि भक्त को उसका काम भगवान् का ही काम है स्पष्ट अनुभव होने लगे। उसकी विचारधारा में स्वयं को भगवान् का अंश समझने का विचार इस प्रकार समा जाय कि काम करते समय उसे अपने पृथक् अस्तित्व का ध्यान न रहे। यही स्पष्ट अनुभव हो कि भगवान् ही काम कर रहे हैं। साथ ही उसे अपने को भगवान् के अंश कहने में मानसिक रूप से पूर्ण शांति अनुभव हो। और यदि वह वैसा नहीं कर पाता है तो उसे असह्य बेचैनी अनुभव होने लगे।

अस्तु, भगवान् के अविभाजित अंश के रूप में अनन्य भक्त वही हो सकता है जो स्पष्ट रूप से यह जान ले कि उसके शरीर के प्रत्येक अवयव परमात्म-सत्ता की वैष्णवी शक्ति के, यानी पालन करने वाली शक्ति के अनन्त अवयवों में से कुछ अवयव हैं। वैष्णवी सत्ता ही उसका पालन-पोषण कर रही है; और वस्तुतः, है भी यह सत्य। क्योंकि व्यक्ति अपने शरीर के सम्बन्ध में यदि किंचित् भी विचार करे तो उसे स्पष्ट अनुभव होगा कि न तो उसने अपने हाथ बनाये हैं और न पैर। न आँखें बनाई हैं न कान। सचमुच, समस्त शरीर के निर्माण की जानकारी न तो उसको है और न उसके माता-पिता को है। न वे यह अधिकारपूर्वक कह सकते हैं कि उन्होंने इन-इन यन्त्रों से इस शरीर के अंगों को बनाया है; न उनके हाथ में जन्म है और न मृत्यु। इतना ही नहीं वरन् उनका शरीर जिस वैष्णवी सत्ता से ओत-प्रोत प्राण तत्व पर निर्भर है उस पर भी उनका कुछ भी अधिकार नहीं है।

अस्तु, हे अर्जुन विवेचन से तुझे स्पष्ट हो गया होगा कि व्यक्ति का अस्तित्व किसी दूसरी अखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त वैष्णवी सत्ता पर निर्भर है। इसी वैष्णवी सत्ता को वह भक्त भगवान् की सत्ता कहता है और स्वयं को समझता है उस सत्ता का एक अविभाजित अंश। चूँकि अंश अपने पूर्ण भाग से पृथक् अस्तित्व नहीं रखता,

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अतः वह भक्त जो पूर्ण वैष्णवी शक्ति का एक अविभाजित अंश है यदि अपने काम को भगवान् का काम कहता है तो असंगत नहीं। इस प्रकार 'अपनेपन' के भाव को भगवान् में लीन करने के लिये यदि बुद्धि निर्णय देकर मन को आदेश देती है तो वस्तुतः न्याय संगत ही है, सर्वथा उचित है। ऐसे ही भक्त को यह समझना चाहिये कि उसके परिवार के व्यक्ति तथा उसके सम्पर्क में आने वाले अन्य व्यक्ति भी भगवान् के ही अविभाजित अंश हैं। अतएव, ऐसा भक्त अपने परिवार का भरण-पोषण करता है अथवा अपने स्वधर्म-पालन के अंतर्गत जो भी कार्य उसे करना पड़ता है उसे वह, 'भगवान् कर रहे हैं' ऐसा मान कर ही करता है। उसे निश्चयात्मक रूप से विश्वास हो जाता है कि उसका अस्तित्व भगवान् की सत्ता का ही एक भाग है जो भगवान् का विशेष काम करने को ही आया है। उसके परिवार का कर्मक्षेत्र अथवा जिन व्यक्तियों का भी कार्य जिस क्षेत्र में उसे करना पड़ता है उस क्षेत्र को वह भगवान् के आदेशानुसार काम करने का अपना क्षेत्र मानता है। अस्तु, जैसे एक व्यक्ति को अपना काम प्यारा लगता है वैसे ही उसे भगवान् का काम भी प्यारा लगे और वह यह समझ जावे कि वास्तव में, काम भगवान् का ही है क्योंकि, वह उनका ही एक अंश है जो उस काम को कर रहा है। अस्तु, उसके काम में और भगवान् के काम में अन्तर ही नहीं है। केवल अंधकार में पड़े रहने के कारण ही, यानी वस्तु स्थिति को ठीक-ठीक न समझने के कारण ही व्यक्ति में भगवान् से पृथक् होकर अपनेपन का भाव आता है।

हाँ, भक्त अपने काम को करते समय कहता तो यही है कि ''मैं अपना काम कर रहा हूँ'' किन्तु, समझता ऐसा है कि भगवान् ही अपना काम कर रहे हैं। ऐसा करने से, यानी ''मैं कर रहा हूँ' यह कहने से और लोग, जिन्हें अभी वस्तुस्थिति का ज्ञान नहीं है, भ्रम में नहीं पड़ेंगे। वस्तुतः, वह तो मन ही मन ''भगवान् ही सब कुछ कर रहे हैं'' स्पष्ट जानता है। क्योंकि उसे इस तथ्य का ज्ञान भली प्रकार से दृढ़ है। अतः जैसे साधारण व्यक्ति का मन अपने काम में आसक्त रहता है वैसे ही इस भक्त का चित्त भगवान् में ही निवास करता रहता है। यद्यपि यह सत्य है, फिर भी अज्ञानी-जन तो यही कहेंगे कि वह अपने काम में ही लग रहा है, भगवान् के काम में नहीं।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सिद्धान्ततः अपने को भगवान् का अविभाजित अंश समझने वाले भक्त के लिये सगुण उपासक भक्त बनने की यही विधि है।

अस्तु, हे अर्जुन यदि तू मेरा अनन्य भक्त होना चाहता है तो बुद्धि से निर्णय करके मन को आदेश दे कि वह यह समझे कि भगवान् ही सब कुछ कर रहे हैं। इसके उपरान्त तू मेरे में ही यानी भगवान् में ही निवास करेगा, अर्थात् तू भगवान् को ही, यानी मझको ही प्राप्त हो जावेगा। यह ध्रुव सत्य है। क्योंकि ऐसी स्थिति में तेरी दृष्टि में तू मुझसे अर्थात् वैष्णवी शक्ति से भिन्न नहीं है, इसमें किंचित् भी सन्देह नहीं।१

अपने को भगवान् का अविभाजित अंश मानने का अभ्यास करने वाला भक्त

देखो अर्जुन, जिनको मेरे भक्त होने का सैद्धान्तिक ज्ञान तो प्राप्त हो गया है किन्तु, जो उस ज्ञान को अपने व्यवहार में नही ला पाये हैं, यानी भगवान् ही सब काम कर रहे हैं ऐसा प्रतिक्षण जिन्हें स्मरण नहीं रह पाता है और जिनके 'अपने-पन' के पूर्व पड़े हुए संस्कार अभी प्रबल हैं, वे भक्त ऐसा सोच-सोच कर काम करने का नित्य अभ्यास करते हैं कि वे काम नहीं कर रहे हैं बल्कि, भगवान् ही काम कर रहे हैं। वस्तुतः उनकी बुद्धि ने मन को आदेश दे दिया है कि वह अपने काम को भगवान् का ही काम समझ कर करें। किन्तु, अभी ऐसा समझने का मन को अभ्यास नहीं हुआ है। अस्तु, ऐसे मेरे भक्त अपने को भगवान् का अविभाजित अंश मानने का अभ्यास करने वाले कहे जाते हैं। उन्हें बार-बार अपनी विचारधारा को सम्हालते रहने से वैसा समझने की शनैः-शनैः आदत पड़ जावेगी। स्पष्ट है कि पहिले तो काम करते समय अपनेपन के ही पूर्व अभ्यस्त संस्कार प्रभाव डालते उन्हें दिखलाई देंगे, किन्तु तुरन्त ही उन्हें सावधान होकर मन में कहना चाहिये कि "क्या उनका अस्तित्व भगवान् से पृथक् है? उनका काम ही कहाँ है? सब काम भगवान् का ही तो है" इस रीति से अनेक बार सावधान होकर कहने से मन वैसा समझने का अभ्यासी हो जावेगा यानी भक्त स्वयं को भगवान् का अविभाजित अंश समझने लगेगा।

---

१. मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः।।८।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अस्तु, ऐसा अभ्यास करने वाला भक्त शनैः शनैः 'अपनेपन' की बात भूल जावेगा और जो भी काम करेगा उसको करते समय वह यही समझेगा कि भगवान् का ही एक अंश मेरे रूप में काम कर रहा है।

अतः हे अर्जुन, यदि तू एक दम मन को स्थिर करके मेरी ओर लगाने में, यानी मैं ही काम कर रहा हूँ यह समझने में असमर्थ है तो अभ्यास योग के द्वारा तू वैसा कर, यानी बारबार अभ्यास करके मुझे प्राप्त करने की इच्छा कर।१ अभ्यास होते ही तुझको मैं फिर तुझसे पृथक् नहीं दिखूँगा। वस्तुतः तू मुझको ही प्राप्त हो जावेगा।

भगवान् के निमित्त कर्म करने वाला भक्त

देखो अर्जुन, कुछ मेरे भक्तों को मेरा सैद्धान्तिक ज्ञान तो है, यानी उन्हें यह ज्ञान तो है कि वे भगवान् के अविभाजित अंश हैं और वे उस ज्ञान को व्यवहार में लाने का अभ्यास भी करते हैं किन्तु, उनसे अच्छी तरह से अभ्यास नहीं हो पाता। ऐसे भक्तों को पहिले मेरे निमित्त कर्म करना चाहिये। मेरे निमित्त कर्म करते-करते वे मुझसे प्रेम करने लगेंगे। प्रेम के अतिरेक का परिणाम यह होगा कि प्रेम करने वाला अपने प्रेमी के काम में और अपने काम में विशेष अन्तर नहीं समझेगा। शनैः-शनैः दोनों का अन्तर कम होने लगेगा और अन्ततोगत्वा वे दो न रह कर एक ही हो जावेंगे इस रीति से जो भक्त मेरे निमित्त कर्म करते हैं, वे भगवान् के तिमित्त कर्म करने वाले कहे जाते हैं।

अस्तु, तुझे ऐसा प्रतीत होता हो कि प्रत्येक प्राणी में भगवान् यानी वैष्णवी शक्ति व्याप्त है और तू उसी का एक अंश है, ऐसी विचारधारा का अभ्यास तू एक-दम करने में असमर्थ है; यदि तू अपने को व अपने परिवार के व्यक्तियों को तथा अन्य लोगों को भगवान् का अंश मान कर, पूर्ण मनोयोग से, अपना या उनका काम नहीं कर सकता; यदि तुझे यह अभी स्पष्ट भान नहीं होता कि यह समस्त जगत वासुदेव भगवान् से व्याप्त है, तो तू इतना तो हृदयंगम कर ही सकता है कि भगवान् की सत्ता से ही जगत का प्रत्येक कार्य होता है। अतः भगवान् ही तेरे इष्ट हैं। वे ही तेरे स्वामी हैं और तू उनका सच्चा भक्त है। तूने भगवान् का

---

१. अथ चित्तं समाधतुं न शक्नोषि मयि स्थिरम् ।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनंजय ।।६।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

काम करने को ही जन्म लिया है। इसी प्रकार तेरे परिवार के व्यक्ति तथा अन्य लोग भी तेरी ही भाँति भगवान् के काम करने को जन्म लेकर आये हैं। अतः चाहे तू व्यक्तिगत काम कर, चाहे अपने परिवार का अथवा अन्य लोगों का, नित्य प्रतिक्षण यही धारणा रख कि तू भगवान् के लिये ही कर्म कर रहा है। तू तो केवल निमित्त मात्र हो जा। अतः तू भगवान् के लिये ही काम करना सर्वश्रेष्ठ समझ। इस विचारधारा से भी यदि तुझसे कर्म किया जावेगा तो भी तू मुझे प्राप्त करने में सफल हो सकेगा। जैसे कि एक गुरुकुल का आज्ञाकारी छात्र, करता तो वैसे वह स्वयं अपना ही काम है, पर सदैव काम करते समय यह ध्यान रखता है कि वह गुरुजी के निमित्त ही पढ़ता है, व्यायाम करता है एवं गुरुकुल के काम भी अपनी सामर्थ्य के अनुसार करता है। इस प्रकार वह अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करते हुए अपनी उन्नति करता है। साथ ही वह गुरूजी के लिये काम करने में तत्पर रहने से गुरुभक्ति भी प्राप्त कर लेता है। निस्सन्देह, गुरुजी के लिये जीवन व्यतीत करने वाले शिष्य पर गुरु-कृपा बिना हुए रह ही नहीं सकती। इसी प्रकार भगवान् को निमित्त बनाकर जो भक्त अपने समस्त काम करता है, उस पर भगवान् की कृपा बिना हुए कैसे रह सकती है। भगवान् को निमित्त बनाकर काम करने से भी अहंभाव कम होने लगता है और शनैः-शनैः भगवान के निमित्त काम करने के अभ्यास से फिर भगवान् का ही काम कह कर काम करना सरल हो जाता है। क्योंकि भगवान् के लिये जो काम करेगा उसे यह तो भान हो ही नहीं सकता कि वह काम उसका निजी है। हाँ, उसके द्वारा हो अवश्य रहा है। जैसे कि एक कृषक का सेवक (महीदार) कृषक के निमित्त समस्त कृषि-कार्य करता है, यानी महीदार अनाज बोता है, और फसल आने पर फसल भी काटता है। किन्तु, समस्त फसल कृषक को दे देता है। वस्तुतः कृषि कार्य होता तो महीदार के द्वारा ही है पर यदि महीदार कृषक को दी जाने वाली फसल पर अहंभाव लावे यानी उसे अपनी कहे तो उसका यह अज्ञान है। बुद्धिमान महीदार कभी भी अहंभाव नहीं लावेगा। इसी प्रकार, भक्त के द्वारा जो भगवान् के निमित्त काम होता है उस काम पर भक्त भी अहंभाव नहीं लाता। हाँ, लोग उसे कर्त्ता बना कर उसमें अहंभाव की भावना जाग्रत कर सकते हैं। किन्तु, यदि भक्त बुद्धिमान् है और वह सच्चे मन से भगवान् के

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

लिये ही कर्म कर रहा है तो उसमें भी वैसे तो अहंभाव की भावना उत्पन्न होगी ही नहीं, और यदि कहीं हुई भी तो उसके द्वारा वस्तुस्थिति पर क्षणिक विचार करने से ही वह दूर हो जावेगी।

अस्तु, हे अर्जुन, यदि तू अपने को भगवान् का अविभाजित अंश मानने का अभ्यास करने में भी असमर्थ है, तो केवल मेरे लिये ही कर्म करने के परायण हो अर्थात् मेरे लिये ही कर्म कर इस प्रकार मेरे लिये कर्मों को करता हुआ भी तू सिद्धि प्राप्त कर लेगा, यानी तू मुझे ही प्राप्त हो जावेगा।[1]

कर्म के परिणाम को भगवान् पर ही छोड़ देने वाला भक्त

देखो अर्जुन, यदि किसी व्यक्ति के आसक्ति भाव के पूर्व अर्जित संस्कार यानी अपनेपन के संस्कार इतने प्रबल हैं कि भगवान् के निमित्त कर्म करने में भी उसे असमर्थता प्रतीत होती है और वह भगवान् का अनन्य भक्त भी होना चाहता है। ऐसे व्यक्ति के लिये भी मुझे प्राप्त करने की एक और सरल विधि है। वह विधि यह है कि भगवान् के अनन्य भक्त बनने का इच्छुक व्यक्ति स्वधर्म-पालन के कर्मों को आसक्ति भाव से आरम्भ कर सकता है और आसक्ति भाव से ही उन कर्मों को पूर्ण करने का प्रयत्न भी कर सकता है। इस सीमा तक आसक्ति भाव, यानी अपनेपन का भाव अपनाने में विशेष आपत्ति नहीं। किन्तु, ऐसे व्यक्ति को कर्म के फल अर्थात् परिणाम को शुद्ध हृदय से भगवान् के अर्पण करना ही चाहिये। अतः भगवान् के अनन्य भक्त बनने के इच्छुक जिस व्यक्ति में उपरोक्त उल्लेख की गई तीन विधियों में से किसी एक के भी अनुसार चलने की सामर्थ्य नहीं है तो वह भगवान् को प्राप्त करने के लक्ष्य से विचलित न होकर, यानी भगवान् को अवश्य प्रापत करना ही है इस निश्चय से अपने मन को जीत कर, अर्थात् किसी भी प्रकार मन लगा कर, जो-जो भी काम वह स्वधर्म-पालन के लिये करे उन सभी कार्यों के सम्पन्न होने पर यह शुद्धता से मन में कह कि "मुझसे बना उतना मैने प्रयत्न कर लिया। अब चाहे फल अनुकूल निकले अथवा प्रतिकूल, मुझे फल से सरोकार नहीं है। मेरे प्रयत्न का फल भगवान् के अर्पण है। अतः न मुझे कार्य-सिद्धि पर प्रसन्न्ता है और न उसकी असिद्धि पर खेद।" इस प्रकार अपनी चित्तवृत्ति

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

को सन्तुलन में रख कर शान्त रहे। निस्सन्देह इस प्रकार के विचार करने में फिर अधिक कठिनाई नहीं अनुभव होगी। क्योंकि, प्रायः जन साधारण भी, जब उन्हें अपनी शक्ति का भरोसा नहीं रहता तब अपने द्वारा किये कर्म के फल को भगवान् पर छोड़ देते हैं ऐसा तूने अनुभव किया ही होगा। परन्तु कर्मफल का भगवान् के लिये त्याग वस्तुतः वे अज्ञान से ही करते हैं। जब कि मुझे प्राप्त करने का इच्छुक भक्त पूर्णमनोयोग से कर्म आरम्भ करता है और उसे पूर्ण करने का भरसक प्रयत्न भी करता है और वह जान बूझ कर कर्म फल को भगवान् के अर्पण करता है। वस्तुतः ऐसे मेरे भक्त को कर्म के परिणाम को त्यागने वाला भक्त कहते हैं।

अस्तु, यदि तू मेरा, यानी भगवान् के निमित्त कर्म करने वाला, भक्त बनने में भी कठिनाई अनुभव करता है, यानी तू असमर्थ है और तेरी इच्छा भगवान् के अनन्य भक्त होने की प्रबल भी है तो तू भगवान् की प्राप्ति का, यानी मुझे प्राप्त करने का लक्ष्य रखते हुए और जीते हुए मन वाला होकर मन से अपने सब कर्मों के फल को भगवान् के लिये, यानी मेरे लिये अर्पण कर।[1] वस्तुतः कर्मफल के त्याग से ही शांति अनुभव होती है। अतः तू कर्म फल-त्याग की महिमा भी अब जान ले।

कर्मफल-त्याग की श्रेष्ठता

देखो अर्जुन, वस्तुतः अविवेकी लोग भगवान् को प्राप्त करने के लिये जिस किसी ने भी जो साधन उन्हें बताया वे उसी का अभ्यास करने लगते है। वे उस साधन के रहस्य को भली-भाँति समझने का प्रयत्न नहीं करते। ऐसे अविवेकपूर्ण अभ्यास की अपेक्षा भगवान् को प्राप्त करने का अर्थात् आत्म-स्वरूप की जानकारी करने का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करना श्रेष्ठ है। अब, यदि किसी को आत्म-स्वरूप की सैद्धान्तिक जानकारी तो है, अर्थात् उसका ज्ञान मात्र तो है किन्तु कर्म करते समय वह उस ज्ञान का ध्यान न रखे तो उसका वह ज्ञान व्यर्थ है। अतः जो व्यक्ति अपने ज्ञान को

---

१. अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान्।।११।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उपयोग में नहीं लाता, उससे वह व्यक्ति, जो कर्म करते समय उस ज्ञान को ध्यान में रखता है, श्रेष्ठ है। अतः ज्ञान से ध्यान श्रेष्ठ है।

यदि किसी को ज्ञान भी और कर्म करते समय उसका ध्यान भी है किन्तु, जब कर्म का परिणाम अनुकूल या प्रतिकूल निकलता है तब प्रायः पूर्व संस्कारों के वशीभूत होकर भक्त बनने का इच्छुक व्यक्ति अनुकूल स्थिति में हर्षित हो जाता है अथवा प्रतिकूल स्थिति में विषाद करने लगता है। अतः जो व्यक्ति कर्मफल के निकलने पर उस फल को त्याग देता है अर्थात् फल को भगवान् के अर्पण करने का अभ्यास करता है वह श्रेष्ठ है। इस प्रकार उस ध्यान से जो कर्म-फल निकलने के समय विस्मरण हो जाता है, कर्मफल का त्याग श्रेष्ठ है। क्योंकि, कर्म-फल-त्याग से शान्ति तुरन्त आ जाती है। शांत चित्त होने से ध्यान एवं ज्ञान दोनों की सार्थकता हो जाती है। इस प्रकार भक्त की भगवद्-भक्ति निर्विघ्न होती रहती है। परिणामतः, भक्त शनैः-शनैः कर्म के आरम्भ से लेकर अन्त तक सब क्रियाओं को भगवान् के निमित्त करने लगता है। इस रीति से भगवान् के निमित्त काम करने की सामर्थ्य आने पर स्वयमेव ही कालांतर में 'अपनापन' प्रभावहीन हो जाता है और भक्त एवं भगवान् का पृथक-पृथक् भाव नहीं रहता। जैसे कि एक व्यक्ति एक संस्था के निमित्त काम करते-करते स्वयं संस्था ही बन जाता है अर्थात् उसका जीवन संस्थामय हो जाता है। वस्तुतः यह कहना असंगत नहीं कि वह संस्था का अविभाजित अंग ही हो जाता है। ऐसे ही भक्त भी, भगवान् के निमित्त काम करते-करते अपने को भगवान् का ही अंश स्पष्ट समझने लगता है। सत्य ही, कर्मफल-त्याग के द्वारा भी भक्त, भगवान् को प्राप्त कर सकता है, इसमें किंचित् भी सन्देह नहीं।

अस्तु, बिना ज्ञान के मर्म को समझे उसके अभ्यास की अपेक्षा भगवान् को प्राप्त करने का वास्तविक ज्ञान श्रेष्ठ है। और केवल वास्तविक ज्ञान प्राप्त करना ही पर्याप्त नहीं किन्तु कर्म का व्यापार करते समय उसका ध्यान रखना भी आवश्यक है। अतएव वास्तविक ज्ञान की जानकारी मात्र की अपेक्षा काम करते समय उस ज्ञान का ध्यान रखना श्रेष्ठ है। यदि किसी को वास्तविक ज्ञान की जानकारी है और कर्म का व्यापार करते समय

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उसका स्मरण भी बना रहता है किन्तु कर्म का परिणाम निकलने पर फल को वह भगवान् का न समझें तो भी ज्ञान अधूरा ही है। अतः वास्तविक ज्ञान को ध्यान में रखने की अपेक्षा कर्मफल का त्याग श्रेष्ठ है। वस्तुतः कर्मफल त्याग से ही वास्तविक ज्ञान पूर्णता को प्राप्त होता है। क्योंकि कर्मफल का त्याग करते ही शान्ति अनुभव होने लगती है।१

हे अर्जुन, मेरे अनन्य भक्त के लक्षण क्या-क्या होते है, उन्हें भी अब तुझे समझाये देता हूँ। तू अच्छी तरह से समझ ले।

देखो अर्जुन, मेरे, यानी भगवान् के अनन्य भक्त को मेरे निमित्त स्वधर्म-पालन करते-करते कालान्तर में ऐसा अनुभव होने लगता है कि

अनन्य भक्त के लक्षण

सब काम वस्तुतः भगवान् के ही हैं। वह भी उनका ही एक अंश है। इस प्रकार मुझमें, यानी भगवान् में और मेरे अनन्य भक्त में केवल यही अन्तर शेष रह जाता है कि अनन्यभक्त का कर्मक्षेत्र एकदेशीय होता है किन्तु, मेरा, यानी भगवान् का कर्मक्षेत्र समस्त ब्रह्माण्ड होता है, और उसके अन्तर्गत अनन्य भक्त का भी कर्मक्षेत्र आ जाता है। यद्यपि अनन्य-भक्त का क्षेत्र मेरे, यानी भगवान् के क्षेत्र का एक सूक्ष्म से अत्यन्त सूक्ष्म अंश के तुल्य होता है, तथापि आचरण की दृष्टि से मुझमें, यानी भगवान् में और मेरे भक्त में कोई विशेष अन्तर नहीं दिखाई देता। जो लक्षण मेरे, यानी भगवान् के होते हैं वे ही प्रायः अनन्य भक्त के होते हैं।

अस्तु, जो अनन्य भक्त अपना मन भगवान् में लगा देता है और जिसकी बुद्धि भी मन को भगवान् के काम में लगा रहने के लिये नित्य आदेश देती रहती है, वह भक्त मुझको, यानी भगवान् को निस्सन्देह, प्रिय लगता है। क्योंकि, अब वह भक्त समस्त प्राणियों में भगवान् को व्याप्त हुए देखता है। अतः संसार के समस्त प्राणियों में किसी की उन्नति देखकर उसको द्वेष उत्पन्न नहीं होता। उसे उनकी उन्नति अपनी ही उन्नति प्रतीत होती है। अतः समस्त प्राणियों में से किसी भी प्राणी से वह द्वेष नहीं करता। सत्य ही, वह द्वेष-रहित जीवन व्यतीत करता है। परन्तु, इतना अवश्य है कि वह सब के दुःख में

---

१. श्रेयोहि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते।
ध्यानात्कर्मफल-त्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्।।१२।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दुःखी और सुख में सुखी रहता है अर्थात् वह प्राणिमात्र का मित्र होता है। अस्तु, वह सब से मित्र के समान आचरण तो करता ही है पर साथ ही उसमें यह और विशेषता होती है कि उसका हृदय करुणा से भरा रहता है। वह किसी को भी कष्ट में पड़े हुए नहीं देख सकता। उसका हृदय उनके कष्ट निवारण के लिये द्रवीभूत हो जाता है। साथ ही, उसके आचरण में यह और असाधारण बात होती है कि प्राणिमात्र से प्रेम करते हुए भी वह उनमें अपनापन लाकर न तो आसक्त होता है और न उसे अपने इन सद्गुणों का अभिमान होता है। अतः वह भक्त ममता और अहंकार-रहित होता है। उसको स्पष्ट भान होता है कि प्रतिकूल स्थिति सदा प्रतिकूल नहीं रहती, यानी उसका अस्तित्व स्थायी नहीं होता। परिपक्व अवस्था आने पर वह अनुकूल हो सकती है। वैसे ही अनुकूल स्थिति भी उसकी दृष्टि में स्थायी नहीं होती। अतः चाहे उसको सुख मिले अथवा दुःख वह दोनों ही स्थितियों में समभाव से रहता है। उसका सुख-दुःख में बुद्धि का संतुलन शिथिल नहीं होता। साथ ही, दण्ड देने की सामर्थ्य होते हुए भी वह अपने को हानि पहुँचाने वाले को क्षमा कर देता है। क्योंकि, उसे यह जानकारी होती है कि अज्ञानता के कारण यह व्यक्ति हानि पहुँचा रहा है; उसे पता नहीं है कि वह स्वयं अपनी ही हानि कर रहा है। जब उसे यह समझ आवेगी तब अपने कृत्य पर वह स्वयं पछतावेगा। अस्तु वह क्षमाभाव का आचरण करता है।

संक्षेप में, तू यूँ समझ कि मेरा अनन्य भक्त किसी भी प्राणी से द्वेष नहीं करता। जीवमात्र का मित्र होता है। उसका हृदय करूणा से भरा रहता है। उसमें न तो ममता होती है और न अहंकार। वह सुख की स्थिति एवं दुःख की स्थिति दोनों को ही एकसी समझता है और क्षमा कर देना उसका स्वाभाविक गुण होता है।[1]

सत्य ही, चाहे जैसी स्थिति हो उसकी चित्त-वृत्ति में चन्चलता नहीं आती, अर्थात् वह सदैव संतुष्ट रहता है। उसे प्रतिक्षण अनुभव

---

१. अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी।।१३।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

होता रहता है कि उसका आत्म-तत्व पृथक् अस्तित्व नहीं रखता, बल्कि संसार में व्याप्त जो परमात्म-तत्व है उसी में मिला हुआ है। इस प्रकार वह निरन्तर योगी बना रहता है, यानी वह निरन्तर योग में लीन रहता है। उसका मन योगी बना रहना ही चाहता है अतः वह यत्नपूर्वक वैसा ही आचरण करता रहता है। सचमुच, उसका निश्चय दृढ़ होता है। वस्तुतः जो मेरा भक्त दृढ़तापूर्वक मेरी अनन्य भक्ति का आचरण करने लगता है वह फिर कभी विचलित नहीं होता। अस्तु, ऐसा भक्त जो निरन्तर योगी है, प्रत्येक दशा में चाहे लाभ हो अथवा हानि सदैव संतुष्ट हैं, जिसका निश्यच दृढ़ है जिसने यत्नपूर्वक मेरा अनन्य भक्त बने रहने के लिये अपने मन और बुद्धि दोनों को ही मेरे अर्पण कर दिया है, निस्सन्देह वह भक्त मेरे को प्रिय है।[१]

मेरा अनन्य भक्त कौन है इसकी पहिचान यदि तू और भी करना चाहता है तो उसके स्वभाव को देख कर तू अच्छी तरह कर सकता है। क्योंकि, उसका स्वभाव इस प्रकार का होता है कि वह जब अन्य लोगों के सम्पर्क में आता है तब वे लोग उसके व्यवहार से उद्विग्न नहीं होते, यानी उसके आचरण से उन्हें किसी प्रकार की मानसिक अड़चनें नहीं आती। साथ ही, वह स्वयं भी औरों के व्यवहार से अपने चित्त को उद्विग्न नहीं करता, यानी औरों के प्रतिकूल आचरण से उत्तेजित होकर उन्हें बुरा नहीं कहता। साथ ही उनकी बुराई हटाने के लिये उन्हें प्रेम से समझा भी देता है। और यदि कोई उसके कहने से नहीं समझता तो भी वह खिन्न नहीं होता। क्योंकि, वह जानता है कि उसके मस्तिष्क का स्तर अभी इतना ऊपर नहीं उठा है जो उसकी बात को वह समझ सके। निस्सन्देह, अनन्य भक्त न तो अनुकूल स्थिति को पाकर हर्षित होता है और न दूसरे की उन्नति देखकर संतप्त होता है। उसे किसी का भी भय नहीं लगता अर्थात वह निःसंकोच यथार्थ बात को मधुरता से कह सकता है। यथार्थ बात कहने के परिणाम स्वरूप यदि चित्त को विक्षेप में डालने वाले प्रसंग (उद्वेग आदि) उपस्थित होते हैं तो वह उन्हें सहन कर लेता है। ऐसा मेरा अनन्य भक्त मुझे प्रिय है।

---

१. संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः।।१४।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

संक्षेप में, हे अर्जुन, मेरे अनन्य भक्त का स्वभाव ही ऐसा होता है जिससे कोई भी प्राणी उद्विग्न नहीं होता और न वह स्वयं भी किसी भी प्राणी से उद्वेग को प्राप्त होता है। उसे हर्ष, अमर्ष, भय, उद्वेग आदि विकार प्रभावित नहीं करते। ऐसे स्वभाव का मेरा अनन्य भक्त मुझे प्यारा लगता है, यानी वह भगवान् को प्रिय है।[१] इसी प्रकार वह व्यक्ति भी मुझे प्रिय है जो आकांक्षा नहीं रखता, अर्थात् जो पूर्णतः तृप्त है जो बाहर से शरीर को शुद्ध एवं साफ रखता है और भीतर से यानी अन्तः करण से भी शुद्ध है, यानी प्राणीमात्र को अपने सदृश ही भगवान् की सत्ता से प्रभावित समझता है जो कार्य करने में कुशल है, अर्थात् आसक्ति-रहित होकर स्वधर्म-पालन करता है जो उदासीन अर्थात् पक्षपात रहित है जो दुःखों से मुक्त है, अर्थात् जिस पर दुःखों का प्रभाव नहीं पड़ता और जो भगवान् की वैष्णवीशक्ति को अपने प्रत्येक कार्य का कर्त्ता मानता है, अर्थात् किसी भी कार्य को वह स्वयं आरम्भ नहीं कर रहा है, ऐसा अनुभव करता है यानी समस्त कर्मों के करने में जो आरम्भ से अन्त तक अहंभाव नहीं लाता उसे तू मेरा अनन्य भक्त समझ।

अस्तु, सब कर्मों के आरम्भों को त्यागने वाला मेरा प्रिय भक्त वह व्यक्ति है जो इच्छाओं से रहित, बाहर भीतर से शुद्ध, कर्म करने में चतुर, पक्षपात से रहित एवं दुःखों से मुक्त है।[२]

इतना ही नहीं वरन् जो शुभ की प्राप्ति में, यानी अनुकूल परिस्थिति के हो जाने पर हर्ष नहीं प्रकट करता और अशुभ के प्राप्त होने में, यानी परिस्थिति के प्रतिकूल हो जाने में भी किसी के प्रति द्वेष भाव नहीं लाता, जो किसी वस्तु के नष्ट हो जाने पर पछताता नहीं है, न किसी वस्तु को प्राप्त करने की अभिलाषा करता है, ऐसा शुभ और अशुभ का परित्यागी व्यक्ति मेरा अनन्य भक्त है। चूँकि जैसी भक्ति मुझे रुचिकर है वैसी ही मेरी भक्ति उसे मान्य है, अतः वह मुझे प्रिय है।

---

१. यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः।।१५।।

२. अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः।।१६।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

संक्षेप में तू यूँ समझ कि मुझे वही भक्त प्रिय है जिसे मेरी ऐसी भक्ति रुचिकर हो जिसमें हर्ष, द्वेष, शोच, और चाहना यानी मांग रत्ती भर भी न हो। न तो उसमें शुभ से कोई प्रयोजन हो और न अशुभ से, यानी उसमें शुभाशुभ दोनों का ही त्याग हो।

इसी प्रकार जो व्यक्ति सब प्रकार के संगों से यानी आसक्ति से रहित है, जो शत्रु और मित्र दोनों में समभाव रखता है, अर्थात् जो यह जानता है कि शत्रुभाव यानी अपने को किसी के द्वारा हानि होने का भाव और मित्रभाव यानी किसी के द्वारा अपने को लाभ पहुँचाने का भाव इन दोनों भावों का सम्बन्ध वैष्णवीशक्ति से है। क्योंकि इन दोनों के योग से ही वैष्णवीशक्ति सृष्टि का पालन एवं लय करती है। वस्तुतः सृष्टि-सृजन में शत्रु-सदृश संहार एवं मित्र-सदृश संरक्षण दोनों ही परम आवश्यक है। जैसे सूर्य, कमल को सुखाता है तब शत्रु जैसा आचरण करता है और जब उसका पोषण करता है तब उसका मित्र जैसा आचरण होता है। शत्रु और मित्र में समभाव सदृश ही जो मान, अपमान, शीत, ऊष्णः, सुख, दुःख आदि के द्वन्द्वों को समान समझता है, अर्थात् जो यह जानता है कि ये भाव इन्द्रियों को स्पर्श करने वाले हैं और क्षणभंगुर है। साथ ही सदा आते जाते भी रहते हैं। अतः उनके वेग को सह लेना चाहिये। उनके आते जाते समय उसका चित्त विचलित नहीं होना चाहिये सत्य ही, वह निन्दा और स्तुति दोनों के वेग में बहता नहीं। क्योंकि, उसकी विचारधारा के अनुसार निन्दा और स्तुति में प्रयोग आने वाले शब्दों के अक्षर सब वर्णमाला के ही अक्षर तो हैं, जिनको उलट पलट कर प्रयोग किया गया है। इतना ही नहीं वरन् जो मौन रहता है, यानी जो बोलने की क्रिया को भी अपनी न मान कर वैष्णवी सत्ता की ही क्रिया मानता है। साथ ही जो किसी भी परिस्थिति में उतावला नहीं होता, यानी सदैव सन्तुष्ट रहता है और जिसकी मानसिक विचारधारा ऐसी है जिसमें उसके निज के घर का कोई अस्तित्व ही नहीं है अर्थात् जो समस्त जगत को ही अपना घर मानता है और जिसकी बुद्धि में स्थिरता है, यानी जिसके निश्चय में दृढ़ता है, हेर फेर नहीं। जो इन लक्षणों से युक्त जीवन के व्यापार को ही भगवान् की भक्ति करना समझता है और जो ऐसी भक्ति का समुचित आदर करता है, वह भगवान् का अनन्य भक्त है और वह उनको प्यारा लगता है।

---

१. यो न हृष्यति न द्वेष्टि त शोचति न काङ्क्षति।
शुभाशुभ-परित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः।।१७।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अस्तु, वह स्थिर-बुद्धि वाला पुरुष मुझे प्रिय है जो शत्रु-मित्र में मान-अपमान में सर्दी-गर्मी में सुख-दुःख में समभाव रखता है और जो अनासक्त है। साथ ही जो निन्दा, स्तुति को समान समझने वाला एवं मननशील स्वभाव का है, यानी जो मौनी है। जिसको शरीर निर्वाह कैसे भी हो जावे, उसी में सदा सन्तोष है और जो अपने घर में ममत्व न रखते हुए सम्पूर्ण जगत को ही अपना निवास स्थान मानता है।[1]

देखो अर्जुन, अब तू मेरे भक्तों के लक्षणों से भली भाँति परिचित हो ही गया है कि वे वैसा ही आचरण करते हैं जैसा कि मेरे द्वारा आचरण होता है। अस्तु, जो भक्त मेरे आचरण को ही सर्वश्रेष्ठ समझते हैं और उसे अनन्य भक्ति से अपने जीवन में उतारने का भरसक प्रयत्न करते हैं; साथ ही उन्हें वैसे आचरण के प्रति पूर्ण श्रद्धा है कि इस प्रकार के आचरण से अवश्यमेव स्वधर्म-पालन करने में नित्य ही शांति बनी रह सकती है; इतना ही नहीं वरन् जो इस प्रकार स्वधर्म-पालन को अमृत यानी अविनाशी मानते हैं अथवा तू यूँ कह सकता है कि उन्हें यह पूर्ण विश्वास है कि यह धर्म सनातनकाल से चला आ रहा है और चलता रहेगा; सत्य ही जो मेरे परायण हुए श्रद्धालुभक्त उपरोक्त धर्ममय अमृत को यानी अविनाशी धर्म को (स्वध ार्म-पालन को) जीवन में उतारते हैं यानी सेवन करते हैं, वे भक्त मेरे को बहुत ही अधिक प्यारे लगते हैं।[2]

संक्षेप में, हे अर्जुन, तू यूँ समझ कि जो मेरे भक्त आत्म-तत्व मे लीन रह कर, यानी स्वयं साक्षी सदृश रहते हुए अनासक्ति भाव से स्वधर्म का पालन करते हैं वे अपने स्वधर्म-पालन द्वारा वस्तुतः मेरी भक्ति ही करते हैं। ऐसे मेरे परायण श्रद्धालु भक्त मुझे अतिशय प्रिय हैं। क्योंकि इस प्रकार अपना कल्याण करने वाले भक्तों के आचरण का यदि कोई भी व्यक्ति अनुकरण करना चाहता है तो सरलता से कर सकता है और कृतकृत्य हो सकता है। ॐ शम्

---

१. समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्ग विवर्जितः।।१८।।
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः।।१९।।

२. ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्त पर्युपासते।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः।।२०।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

महात्मा श्री नारायणदास जी प्रणीत ग्रन्थ

1. गीतामृत (जीवन यापन की कला)
   (प्रथम भाग अध्याय 1 से 6)
2. गीतामृत (जीवन यापन की कला)
   (द्वितीय भाग अध्याय 7 से 12)
3. गीतामृत (जीवन यापन की कला)
   (तीसरा भाग अध्याय 13 से 18)
4. रामचरित मानस के 10 प्रसंग
5. रामचरित मानस के 10 रहस्य
6. साधक शंका समाधान
7. साधक प्रश्नोत्तर शतक (प्रथम)
8. साधक प्रश्नोत्तर शतक (द्वितीय)
9. साधक विचार प्रगति
10. साधक साधना (भजन)
11. जैसे मैंने सीखा
    (अनुभूति से पूर्व की मेरी जीवन घटनायें)
12. कुण्डलिनी (व्यक्तिगत अनुभव)
13. आत्मबोध
14. Realisation of the Self (English)
15. साधना
16. स्वशक्ति साधना का संक्षिप्त परिचय
17. दिव्यशक्ति बोध (भजन)
18. वचनामृत
19. बुद्धि विकास
20. बापू के एकादश वृत
21. ईशावास्योपनिषद (व्यक्तिगत दृष्टिकोण)
22. मानव विकास की पूर्णता
23. कुण्डलिनी का जीवन में उपयोग (सजिल्द)
24. रामचरित मानस में कुण्डलिनी (व्यक्तिगत अनुभव)
25. मैंपन का विवेचन (व्यक्तिगत अनुभव)

प्रकाशक - नारायण आध्यात्मिक ट्रस्ट शिवपुरी

मुद्रक : मुकेश प्रेस, शिवपुरी (म.प्र.) फोन :07492-232104

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh